धर्म-अधर्म मीमांसा गीताञ्जली

-वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव के आद्य मोक्षमार्ग प्रदर्शक, शिक्षा दाता व दीक्षा के प्रेरक व सान्निध्यदाता वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री विमलसागर जी गुरुदेव के जन्म शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष्य में...

अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. एम.पी. गाँधी, 383, हिरणमगरी, सेक्टर-11, उदयपुर (राज.)
   (स्व. विद्यावती गाँधी की पुण्यतिथि स्मृति में)
2. श्रीमती हेमलता देवी महेन्द्रजी शाह, ग.पु. कॉलोनी
3. श्रीमती प्रेमलता देवी प्रवीणजी संघवी, ग.पु. कॉलोनी
4. सुश्री डॉ. दामिनी पुत्री श्री कमलकुमार जी, ग.पु.कॉ. सागवाड़ा

ग्रन्थांक-249 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 मूल्य-51/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के समन्वयक आचार्य कनकनन्दी

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : बहुत प्यार करते हैं.....)
कनकनन्दी गुरुवर...वैश्विक श्रमण...
अध्यात्म/(परमागम) ज्ञाता...विज्ञानी श्रमण...
(मणिकाञ्चन यह योग है विरल)...(ध्रुवपद)...

प्राचीनता की आप हैं मूरत...आधुनिक ज्ञान के समन्वयक/(अभिप्रेरक)...
आध्यात्मिकमय...वैज्ञानिक...मणिकाञ्चन...कनकनन्दी...(1)...

प्राचीन आगम से जाने परम सत्य...आधुनिक दृष्टि से वे हैं तथ्य...
समन्वय/(अनेकान्त) दृष्टि...सहज-सरल...मणि...कनक...(2)...

देश-विदेशों के अनेक विध...आप पढ़ते हैं ग्रंथ विविध...
अध्यात्म/(परमागम) सम...नहीं पूर्ण सत्य...मणि...कनक...(3)...

देश-विदेशों के विज्ञानीजन...साधु-साध्वी जिज्ञासुजन...
समाधान/(अध्यापन) पाते हैं...सूक्ष्म-गहन...मणि...कनक...(4)...

आध्यात्मिक है शुद्ध स्वरूप...हर जीवधारी का यही स्वरूप...
सत्य-साम्य-सुखयुत...सभी जीव सम...मणि...कनक...(5)

अध्यात्म जानना-मानना विधेय...निज को ही पाना है अन्तिम ध्येय...
इसी हेतु 'सुविज्ञ'...करे यतन...मणिकाञ्चन...कनक...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 29.09.2015, रात्रि प्रायः 8.45

विश्व धरा पर न्यारे : गुरुवर

रचयित्री-रंजना वीरेन्द्र जैन (कॉलोनी)

(चाल : हे गुरुवर! धन्य हो तुम.....)
वैज्ञानिक धर्माचार्य गुरुवर तीन लोक में न्यारे है।
लक्ष्य है इनका सर्वज्ञ बनना, स्व-आत्मा में लीन रहना।। (ध्रुव)

कनक सम कनकनन्दी गुरुवर, जन-जन के हितकारी है।

आत्मा के अनुरागी है परमात्मा के ध्याता है।
मुख से खिरती है जिनवाणी, जन-जन के कल्याणी है।
शंका-समाधान करते है, ज्ञानामृत बरसाते है।। लक्ष्य है...(1)

सरल स्वभावी मृदु व्यवहार कर पात्री बन करे आहार।
कभी किसी से नहीं विवाद, खुशी-खुशी देते आशीर्वाद।
अनुशासन प्रिय ये गुरुवर, श्रुत अभ्यासी हैं गुरुवर।
ज्ञानी ध्यानी योगी है, तीन लोक में न्यारे है।। लक्ष्य है...(2)

अधिक समय ये मौन रहते आगम की चर्चा करते।
जिनवाणी का मंथन कर, गीतांजली में स्वर रचते।
नियमसार हो या समयसार, गागर में सागर भरते।
महावीर के लघुनंदन, तीन लोक में न्यारे है।। लक्ष्य है...(3)

पुनर्वास कॉलोनी (सागवाड़ा), दिनांक 22.09.2015, रात्रि 10.45

मनदूत के साथ भेजा गुरुवर को नमन

-आ. सुवत्सलमती

(चाल : पंखिड़ा ओ पंखिड़ा.....)
मनुआ ओ मनुआ, मनुआ ओ मनुआ।
मनुआ मेरे उड़के जाना गुरुकुल रे/(में)।
गुरुवर से कहना तेरे भक्त/(शिष्य) आये है।। (ध्रुव)

ज्ञान पिपासु जन जल्दी आवो रे।
गुरु देशना को तुम ध्यान से सुनो रे।
कथा सुनो/आगम सुनो/अध्यात्म सुनो रे।। गुरुवर से...(1)

गाँव-गाँव के जिज्ञासु जन शीघ्र आवो रे।
समवशरण जैसा लाभ तुम भी पावो रे।
सोहं जानो/अहं जानो/मैं को जानो रे।। गुरुवर से...(2)

म्हारा गुरुवर तो बस, आत्म ध्यान करे रे।
हर क्षण क्षमा व समता में रहे रे।

आगम ज्ञाता/अध्यात्म ज्ञाता/सिद्धांत ज्ञाता रे।। गुरुवर से...(3)

ज्ञानी विज्ञानी भाई शीघ्र आवो रे।
भौतिकता से परे तुम अध्यात्म सुनो रे।
प्रभात आवो/पारस आवो/श्याम जी आवो रे।। गुरुवर से...(4)

नन्दौड़, दिनांक 05.10.2015, मध्याह्न 2.35

गीताञ्जली धारा का उद्गम-प्रस्त्रवण-प्रसार

(गीताञ्जली का इतिहास-सहयोगी व सदुपयोगी)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरी धारा अमृत.....)

कविता/(गीत, गाना, पद्य, काव्य) तेरी अजस्त्र धारा...झर-झर बहती जाए...
सीपुर (2011) से प्रारम्भ/(उद्गम) होकर...अविरल बहती (ही) जाए...कविता...(ध्रुव)
चिर सञ्चित मेरी भावना...प्रगट हुई सीपुर (2011) से...
मेरी भावना/(उत्कण्ठा, कल्पना) पीड़ा-सम्वेदना...प्रस्त्रवण (हुई) तीर्थ क्षेत्र से...
प्रशांत-पावन-प्राकृतिक...स्वच्छ वातावरण से...काव्य...(1)...
इस क्षेत्र के जीर्णोद्धारक...गुरुभक्त नितिन भाई...
जिसके प्रेरक समता सागर...दिगम्बर श्रमण सूरी...
इसी क्षेत्र के वर्षायोग (2011) में...प्रस्त्रवण हुई काव्य धारा...पद्य...(2)...
इस धारा के भगीरथी हैं...श्रमण श्री सुविज्ञसागर...
सहयोगी क्षमाश्री आर्यिका...आध्यात्मनन्दी शिष्यवर...
ब्रह्मचारिणी फाल्गुनी-विधि का...सहयोग भी भरपूर...गीत...(3)...
साध्वी सुवत्सल-सुनीति-सुनिधि...सुवीक्ष ब्रह्मचारी सोहन...
सूरी गुप्तिनन्दी-सुयशगुप्त...चन्द्रगुप्त श्रमण...
साध्वी आस्थाश्री का भी योगदान...है मम शिष्यगण...पद्य...(4)...
शिष्य पद्मनन्दी (सूरी) के अनुरोध से...बन रही सरल कविता...
कठिन कविता के नीचे...दे रहा हूँ हिन्दी टीका...
वैज्ञानिक अग्रवाल के कारण...गाथा/(श्लोक) की कर रहा हूँ कविता...(5)...

प्रकाशन भी कर रहे हैं...स्वेच्छा से भक्तगण...
देश-विदेश के जैन-अजैन...भक्त-शिष्यगण...
लाभान्वित भी हो रहे हैं...आबाल-वृद्धजन...काव्य...(6)...
स्वाध्याय-चर्चा-प्रवचन में...हो रहा है प्रयोग/(उपयोग)...
ज्ञान-विज्ञान-शिक्षा-संस्कृति से...पा रहे हैं आनंद...
इन कारणों से 'कनकनन्दी' को...मिले है ज्ञानानंद...कविता...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 09.10.2015, रात्रि 11.45

गुरुदेव की आध्यात्मिक देशना

-आ. सुवत्सलमति

(चाल : बहुत प्यार करते है.....)
गुरुदेव कहते है आत्म श्रद्धा करो।
समझ में न आये तो भी-2 रूचि से (सुनो)/करो।। (ध्रुव)

तत्त्व चर्चा सुनने वाले बहुत ही कम है।
सुनकर समझने वाले उससे भी कम है।
समझकर तत्त्वों का-2 करो चिन्तन मनन।। गुरुदेव...(1)

चिन्तन मनन कर स्मरण में रखना।
स्मरण कर उसमें दुर्लभ है रमना।
दुर्लभ से दुर्लभ है-2 आत्म रमण।। गुरुदेव...(2)

आत्म स्वरूप का ज्ञान होता है दुर्लभ।
ज्ञान होने पर भी ध्यान है दुर्लभ।
आत्म प्रमोद से प्राप्त-2 स्वात्मा मिलन।। गुरुदेव...(3)

गुरु देशना से स्व-स्वरूप जाना।
अजीवादि तत्त्वों से 'मैं' को भिन्न माना।
वात्सल भाव से-2 (मैं) होऊँ आत्म मगन।। गुरुदेव...(4)

नन्दौड़, दिनांक 08.10.2015, रात्रि 8.40

मेरे स्व-मूल्यांकन से मुझे प्राप्त लाभ

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., आत्मशक्ति.....)

मेरा मूल्यांकन मैं स्वयं ही करूँ, आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वत्र करूँ।
इसी से मुझे मिलते अनेक लाभ, समता शांति निस्पृहता का लाभ।। (1)

मेरा मूल्यांकन (मैं) आध्यात्मिक से करूँ, द्रव्य भाव-नोकर्म परे मैं करूँ।
सच्चिदानंदमय रूप से (मैं) करूँ, ख्याति पूजा लाभ परे (मैं) करूँ।। (2)

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र से (मैं) करूँ, निस्पृह निराडम्बर समता से (मैं) करूँ।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे मैं करूँ, भेदभाव संकीर्णता परे मैं करूँ।। (3)

ज्ञान-ध्यान निर्मल परिणाम से करूँ, शोध-बोध स्वाध्याय द्वारा मैं करूँ।
सरल-सहज व निस्पृहता से (मैं) करूँ, लंद-फंद-द्वंद रहितता से करूँ।। (4)

आत्म विशुद्धि-आत्म शांति से करूँ, प्रतिस्पर्द्धा ईर्ष्या तृष्णा रहित करूँ।
आत्म उन्नति व कर्मक्षय हेतु मैं करूँ, संतोष तृप्ति व क्षमा से करूँ।। (5)

अहंकार ममकार परे मैं करूँ, स्वाभिमान सोऽहंभाव/('अहंभाव') से करूँ।
अपेक्षा-उपेक्षा प्रतीक्षा रहित, स्वावलंबी कर्तव्यनिष्ठा से करूँ।। (6)

इसी से शांति-समता स्थिरता आती, आसक्ति चिन्ता व तृष्णा घटती।
ढोंग-पाखण्ड व आडंबर न होते, सूक्ष्म व्यापक उदार भाव बढ़ते।। (7)

लेखन व अध्यापन प्रचुर होते, साधु-साध्वी-वैज्ञानिक ज्ञानी पढ़ते।
देश-विदेशों में होता धर्म प्रचार, 'कनकनन्दी' रहता अकिंचित्कर।। (8)

नंदौड़, दिनांक 02.10.2015, मध्याह्न 12.10 (गाँधी जयंती)
(यह कविता श्रमण सुविज्ञसागर जी के कारण बनी।)

स्वाध्याय परम तप से मुझे प्राप्त लाभ

-आ. कनकनन्दी

(चाल : रात कली इक.....)

धन्य हे! मेरा भाग्य जगा है, स्वाध्याय तप में सतत लगा है।
छोड़ के राग-द्वेष मोह-ममत्व, आत्मविशुद्धि में सतत लगा है।। (ध्रुव)

इसी हेतु त्यागा ख्याति पूजा लाभ, पूर्वाग्रह संकीर्ण भाव।
त्याग के पक्षपात एकान्त आग्रह, सनम्र सत्यग्राही बनाके स्वभाव।। धन्य हे!...(1)

प्रमाण नय निक्षेप सहित, अनेकान्त (मय) स्याद्वाद सहित।
उत्सर्ग-अपवाद संतुलन युक्त, करता हूँ स्वाध्याय शुद्धि सहित।। धन्य हे!...(2)

इसी से स्व का परिज्ञान होता, जिसको पर का भी (परि) ज्ञान होता।
जिससे हिताहित परिज्ञान होता, ग्राह्य-अग्राह्य (का) शोध-बोध होता।। धन्य हे!...(3)

इसी से होता है सम्यग्दर्शन, जिससे ज्ञान (भी) सुज्ञान होता।
जिससे आचरण (भी) सम्यक् होता, मोक्षपथ भी प्रशस्त होता।। धन्य हे!...(4)

श्रद्धा-प्रज्ञा से होता है ज्ञान, 'मैं' तो चिदानन्द ज्ञानधन।
राग-द्वेष-मोह मुझसे पर, तन-मन-इन्द्रिय (भी) मुझसे पर।। धन्य हे!...(5)

द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसार, शक्ति आयु स्वास्थ्य अनुसार।
आहार-विहार-निवास-विचार/(निर्णय) होता (है) संतुलित आगमानुसार।।
धन्य हे!...(6)

भाव में निर्मलता स्थिरता आती, समता (शांति) निस्पृहता आती।
आत्म गौरव 'सोऽहं' 'अहं' (मैं) भाव जगे (अतः) 'कनक' स्वाध्याय सतत करे।।
धन्य हे!...(7)

संदर्भ-

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।
अविजाणंतो अट्ठे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू।। (233) प्र.सार

गाथार्थ-शास्त्र के ज्ञान से रहित साधु न तो आत्मा को न पर को जानता है। परमात्मा आदि पदार्थों को नहीं जानता हुआ साधु किस तरह कर्मों का क्षय कर सकता है?

नन्दौड़, दिनांक 24.09.2015, रात्रि 8.30

मेरे अंतिम कार्य हेतु मैं पुरुषार्थ रत हूँ

(मेरा लक्ष्य है-अभूतपूर्व-अद्वितीय-एक बार ही करने योग्य काम)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

अनादि काल से अनंत भवों में, किया है मैंने अनंत काम।
एक बार भी अभी तक नहीं किया, आत्म-उपलब्धि रूप महान् काम।।

हर एक काम से होते उत्पन्न, संख्यात असंख्यात अनंत काम।
उन सभी कारणों से मिले अभी तक, अनंतानंत दुःख व दैन्य।।

चतुर्गति चौरासी लक्ष योनि में, लिया हूँ जन्म भी अनंतानंत बार।
राग-द्वेष व घृणा ईर्ष्या तृष्णा भी, किया है मैंने अनंतानंत बार।।

हिंसा-झूठ व कुशील परिग्रह, अन्याय-अत्याचार भी किया अनंत बार।
शोषण मिलावट व चोरी भ्रष्टाचार, किया भी मैंने है अनंतानंत बार।।

फैशन-व्यसन व भोग-उपभोग भी, किया है मैंने भी अनंतानंत बार।
ख्याति पूजा लाभ व प्रशंसा प्रसिद्धि, प्राप्त किया भी है मैंने अनंत बार।।

किन्तु अभी तक एक ही कार्य, नहीं किया है मैंने एक भी बार।
आत्मोपलब्धि रूप मोक्ष कार्य, करना है शेष जिसमें मैं तत्पर।।

इसी हेतु ही मैं श्रमण बना हूँ, ध्यान-अध्ययन में ही रहूँ तत्पर।
समता-शांति व निस्पृहता युक्त, करता हूँ आहार-विहार-विचार।।

अभूतपूर्व व अद्वितीय यह काम, जिसकी उपलब्धि पेरे न (रहे) अन्य काम।
इसी कार्य हेतु ही मैं पुरुषार्थ रत, 'कनकनन्दी' का यह ही अंतिम काम।।

नन्दौड़, दिनांक 30.09.2015, रात्रि 8.08

मेरे लिए आध्यात्मिक ही परम सत्य क्यों?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

परम सत्य को (मैं) जानना चाहता हूँ...अभी नहीं तो आगे पाना चाहता हूँ...
मनुष्य की सीमा से भी परे चाहता हूँ...इन्द्रिय-यंत्रों से भी परे चाहता हूँ...

परम सत्य को...(स्थायी)...

पढ़ता हूँ देश-विदेशों के ग्रंथों को...मानवकृत अनेक विध ग्रंथों को...
धर्म-दर्शन-विज्ञान-इतिहास को...सत्य जानने हेतु न्याय संविधान को...
इन सभी में नहीं है परम सत्य...परस्पर विरोध भी सभी में निहित...
नहीं है परम समता व परम उदारता...नहीं है समन्वय व नहीं निरपेक्षता...

परम सत्य को...(1)...

कार्य-कारण संबंध भी सभी नहीं...सम्पूर्ण प्रश्नों के भी उत्तर नहीं...
परम सुख हेतु न उपाय भी होते...उपायों के वर्णन भी सम्यक्/(सम्पूर्ण) न होते...
आध्यात्मिक में ही उक्त दोष न होते...सम्पूर्ण गुण इसी में सहित भी होते...
श्रद्धा-प्रज्ञा से ही ऐसा अनुभव होता...अतएव आध्यात्मिक को मैं चाहता...

परम सत्य को...(2)...

आध्यात्मिक है मेरा शुद्ध स्वरूप...हर जीव का भी है यही स्वरूप...
शुद्ध रूप से हर जीव अतः समान...परम सत्य समता व सुख सम्पन्न...
आध्यात्मिकता ही मेरा स्वभाव होने से...उसे पाने की वृत्ति होती सहजता से...
स्वभाव भले कभी विभाव हो सकता...स्वभाव का अभाव कभी न होता...

परम सत्य को...(3)...

राग-द्वेष-मोह भी न होते आत्मा में...ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा भी न होते आत्मा में...
सच्चिदानन्दमय होता है आत्मा...आत्मा का शुद्ध रूप आध्यात्मिकता...
इसे ही जानना व पाना है मुझे...आत्मा की उपलब्धि करना है मुझे...
इसी हेतु ही 'मैं' करूँ सदा प्रयत्न...'कनकनन्दी' का यह परम लक्ष्य...

परम सत्य को...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 27.09.2015, रात्रि 11.55 (अनन्त चतुर्दशी व पूर्णिमा)
(यह कविता श्रमण सुविज्ञसागर के कारण भी बनी।)

दुनिया से स्वतंत्र होने का लक्ष्य

-आ. कनकनन्दी

(चाल : अपनी आजादी को हम हरगिज.....)

मेरे लक्ष्य/(स्वभाव) को मैं हरगिज त्याग कर सकता नहीं...

दुनिया जाने या न माने...उनकी मुझे परवाह नहीं...।। (स्थायी)...

मैं हूँ आत्मा सच्चिदानन्द, उसे ही पाना लक्ष्य है...2
इसी के बिना सत्ता-संपत्ति, पाना नहीं मेरा लक्ष्य है...2

राग-द्वेष (व) काम-क्रोध होते मेरे (परम) शत्रु
इनके नाश के द्वारा ही, होऊँगा मैं अजात शत्रु

तब ही बनूँगा मैं भी स्वतंत्र व सार्वभौम
स्वावलंबी स्वानुशासी शुद्ध-बुद्ध व आनंद।। (1)...

राग-द्वेष व काम-क्रोध से (है) परतंत्र ये दुनिया...2
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि से, आबद्ध ये दुनिया...2

जो स्वयं परतंत्र है उसकी मैं क्यों परवाह करूँ
उनके अनुसार मैं क्यों अनात्म/(परतंत्र) विचार करूँ

दुनिया है परतंत्र मेरा लक्ष्य किन्तु स्वतंत्र...
स्वतंत्रता को पाने हेतु, 'कनक' करे प्रयत्न।। (2)...

वन्दे आत्मन्...वन्दे शुद्धात्मन्...

नन्दौड़, दिनांक 05.10.2015, रात्रि 1.30
(यह कविता मणिभद्र के कारण बनी।)

मुझे स्व (मैं) को ही जानना-मानना-पाना है!

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

मेरे स्वरूप को 'मैं' जानना चाहता हूँ, जान-मानकर 'मैं' को पाना चाहता हूँ।
पर स्वरूप को भी जानना चाहता हूँ, जान-मानकर पर को त्याग करता हूँ।। (स्थायी)

मेरा स्व शुद्ध (स्व) रूप चिदानंदमय, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय।
अनादि अनिधन हूँ मैं अमूर्त रूप, स्वयंभू स्वयंपूर्ण समता स्वरूप।।

मेरे स्व-स्वरूप से अन्य होते (है) परे, चेतन-अचेतन द्रव्य होते हैं पर।
हर द्रव्य स्वतंत्र मौलिक भी होते, अतः अन्य द्रव्य सभी मेरे न होते।। (1)

अन्य को मेरा मानना होता <u>मिथ्यात्व</u>, अन्य प्रति आसक्ति होता (है) <u>ममत्व</u>।

आसक्ति होना ही होता (है) परिग्रह, आसक्ति स्वीकारना होता है चौर्य।।
इसी से होता है आत्मा अशुद्ध, जिससे होता है कर्मों का बंध।
जिससे संसार में होता है भ्रमण, जिससे मिलते दुःख जन्म-मरण।। (2)

इसलिए पर को 'मैं' करता हूँ त्याग, श्रद्धा प्रज्ञा से सभी पर संयोग।
यथायोग्य आचरण से कर रहा हूँ त्याग, संपूर्ण त्याग से चाहूँ आत्म-स्वभाव।।
स्वयं को पाना ही है मेरा परम लक्ष्य, इसी हेतु (ही) ध्यान-अध्ययन तप।
पठन-पाठन व चर्या लेखन, 'कनक' का सब कुछ स्व हेतु समर्पण।। (3)

नन्दौड़, दिनांक 17.10.2015, रात्रि

मैं स्वयं को पूर्णतः नहीं जाना, अतः मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं अल्पज्ञ हूँ अतः सतत ज्ञानार्जन रत हूँ

(मुझे पहले 'मैं' को जानना-मानना पाना है)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

अनुभव से मुझे होता है ज्ञान, अभी तक नहीं है मुझे संपूर्ण ज्ञान।
आत्मा से लेकर परमात्मा तक, अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक।। (1)

स्वयं को (मैं) अभी तक पूर्ण न जाना, तन-मन-अक्ष आत्मा को न जाना।
तब मैं कैसे अन्य को पूर्ण जानूँगा, अनंत परम सत्य को कैसे जानूँगा।। (2)

अतएव 'मैं' स्वयं को पहले जानूँ, उसे जानकर मानकर 'मैं' को पाऊँ।
अन्य सभी कुछ हो जायेंगे ज्ञात, अतएव स्व हेतु मैं प्रयासरत।। (3)

स्वज्ञान हेतु भी अनंत ज्ञान चाहिए, परम सत्य हेतु भी अनंत ज्ञान चाहिए।
स्वयं को जानना भी मेरा है स्ववश, पर का ज्ञान तो हो जाता है स्वतः।। (4)

स्व को जानना-मानना-पाना न हुआ, जिससे संसार में भ्रमण हुआ।
स्व-उपलब्धि ही होती है परिनिर्वाण, इसी के लिए ही 'कनक' बना है श्रमण।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 23.10.2015, प्रातः 9.00

आचार्य श्री कनकनन्दीजी श्रीसंघ की वंदना

-रंजना जैन

(लय : मेरी लगी गुरु संघ प्रीत.....)

गुरु कनकनन्दी जी के चरण की करे वंदना।
गुरु कनकनन्दी जी के संघ की करे वंदना।।

है ज्ञान की ज्योति अनंत, करे हम वंदना।
मिट जाए भव का फंद, करे हम वंदना।।

छत्तीस गुण के ही तुम धारी-2
मोक्षपुरी के ही अधिकारी-2

भव जल से जाओ छूट, करे हम वंदना।
गुरु कनकनन्दी जी...है ज्ञान की ज्योति...

गुरु में ज्ञान अनंत समाया-2
सुविज्ञ सा बोध कराया-2

रच डाले आध्यात्मिक छन्द, करे हम वंदना।
गुरु कनकनन्दी जी...है ज्ञान की ज्योति...

करुणा रग-रग में है समाई-2
सुवत्सलता है सुखदाई-2

सुवीक्ष करे गुणप्रीत, करे हम वंदना।
गुरु कनकनन्दी जी...है ज्ञान की ज्योति...

सोहन तेरे चरण पखारे-2
वीरों के तुम इन्द्र कहाये-2

दिव्य वीणा वादिनी रंजन, करे हम वंदना
गुरु कनकनन्दी जी...है ज्ञान की ज्योति...

मैं सभी का कल्याण चाहता हूँ...किन्तु...!?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

सभी का कल्याण (हो) मैं सदा चाहता हूँ, राग द्वेष मोह स्वार्थ रिक्त चाहता हूँ।

उपकृत होवे कोई अथवा नहीं, तथापि मेरी भावना मैं त्यागता नहीं।। (1)

तीर्थंकरों की भावना भी ऐसी होती, तीर्थंकर प्रकृति अतः बन्ध होती।
सभी जीव उपकारी उपदेश वे देते, सभी जीव उनसे उपकृत न होते।। (2)

अज्ञानी-मोही व आत्महित जानते, अतएव आत्महित नहीं चाहते।
भागोपभोग से ही स्व-हित मानते, अनात्म काम में ही आसक्त होते।। (3)

संकीर्ण पंथ मत जाति भाषा में, सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री (बुद्धि) में।
हठाग्रह पूर्वाग्रह स्वार्थ भाव में, आसक्त रहते है वे क्षुद्र भाव में।। (4)

इसलिए (मैं) निस्पृह व शांत रहता हूँ, दबाव प्रलोभन से मैं रिक्त रहता हूँ।
आत्मकल्याण में मैं रत रहता हूँ, 'कनक' परहित यथायोग्य करता हूँ।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 22.10.2015, पूर्वाह्न 9.22

मेरी भावना व आगामी कार्य योजना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., क्या मिलिये....., भातुकली....., छोटी-छोटी.....)

आत्म विश्लेषण मैं करता जाऊँ...आत्मविशुद्धि मैं करता जाऊँ...
आत्मा की मलिनता मिटाता जाऊँ...समता-शांति बढ़ाता जाऊँ...

संकल्प-विकल्प मैं छोड़ता जाऊँ...संकल्प-शक्ति को बढ़ाता जाऊँ...
आकर्षण-विकर्षण त्यागता जाऊँ...स्थिरता-धीरता बढ़ाता जाऊँ...(1)

विभाव-भाव को त्यागता जाऊँ...स्वभाव-भाव मैं बढ़ाता जाऊँ...
परावलंबन को त्यागता जाऊँ...स्वावलंबन बढ़ाता जाऊँ...

ख्याति-पूजा-लाभ त्यागता जाऊँ...ध्यान-अध्ययन मैं बढ़ाता जाऊँ...
तेरा-मेरा-भेद-भाव त्यागता जाऊँ...वीतरागी-साम्यभावी बनता जाऊँ...(2)

अपेक्षा-प्रतीक्षा को त्यागता जाऊँ...निरपेक्ष-निस्पृही बनता जाऊँ...
संकीर्ण-कट्टरता को त्यागता जाऊँ...उदार-सहिष्णु मैं बनता जाऊँ...

भौतिक दृष्टि को त्यागता जाऊँ...आध्यात्मिक भावी बनता जाऊँ...
संकीर्ण-पंथ-मत त्यागता जाऊँ...अनेकान्ती-सत्यग्राही बनता जाऊँ...(3)

छिद्रान्वेषण व निन्दा त्यागता जाऊँ...गुणग्राही-समीक्षक बनता जाऊँ...

अंधानुकरण-मिथ्या दंभत्यागता जाऊँ...हिताहित विवेकी बनता जाऊँ...
तोता रटंत जानकारी छोड़ता जाऊँ...अनुभवी प्रगतिशील बनता जाऊँ...
प्रदर्शन-आडम्बर त्यागता जाऊँ...आदर्श-आत्मदर्शी बनता जाऊँ...(4)

मान-अभिमान मैं त्यागता जाऊँ...स्वाभिमानी-सोहंभावी बनता जाऊँ...
पूजा-प्रसिद्धि को मैं त्यागता जाऊँ...पूजनीय गुणों को पाता ही जाऊँ...
धनी-गरीबों के भेदभाव त्यागूँ...गुण-गुणी प्रमोद भाव ग्रहण करूँ...
धन-जन-मोहभाव त्याग मैं करूँ...धार्मिक जनों से वात्सल्य धरूँ...(5)

संकीर्ण बौद्धिकता को त्यागता जाऊँ संवेदनशीलता को बढ़ाता जाऊँ...
अशुभ भावों को मैं त्यागता जाऊँ...शुभ भावों को मैं बढ़ाता जाऊँ...
शुभ भाव से परे शुद्ध को चाहूँ...शुभ में रहकर मैं शुद्ध को ध्याऊँ...
संपूर्ण बंधनों से परे हो जाऊँ...'कनक' 'मैं' स्वरूप को शीघ्र पाऊँ...(6)

नन्दौड़, दिनांक 23.10.2015, रात्रि 9.52

आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव की आध्यात्मिक विशेषताएँ

शब्द रचना-विजयालक्ष्मी गोदावत (पु. कॉलोनी), सहायक-आ. सुवत्सलमती

भक्तों व शिष्यों का सबका कहना है, कनकनन्दी जी मेरे गुरु है।
भव्यों व विजया का भी यही कहना है, स्वाध्याय तपस्वी मेरे गुरु है।। (ध्रुव)
मौन व समता में गुरुजी रहते है, पाठक विद्यार्थी मेरे गुरु है। ला-ला-ला^{2}
हर क्षण आत्मा में लीन रहते है, 'मैं' को जानते व 'मैं' का बोध करावे।
सतत स्वाध्यायरत स्वाध्याय करावे, 'मैं' में ही लीन रहते वे मेरे गुरु है।। भव्यों...(1)
पंचम काल में 'मैं' का बोध करावे, विज्ञान से परे धर्म (को) बतावे।। ला-ला-ला^{2}
पूर्वाचार्यों ने जैनागम में (जो) लिखा है, इसका बोध गुरुवर हम कराते।
अध्यात्म शोधी निराले संत है, भाषा विज्ञानी आत्मज्ञानी गुरु है।। भव्यों...(2)
जैनागम पर Ph.D., M.Phil. कराते, शोध-बोध कर वैश्विक धर्म बताते। ला-ला-ला^{2}
ज्ञानी ध्यानी निर्मोही एकांत प्रिय है, सभी तपों से श्रेष्ठ स्वाध्याय तप करे।
विज्ञापन रहित मेरे गुरु है, 'मैं' के ज्ञानी 'मैं' के ध्यानी गुरु है।। भव्यों...(3)

अनुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के समन्वयक-आचार्य कनकनंदी	2
2.	विश्वधरा पर न्यारे : गुरुवर	2
3.	मनदूत के साथ भेजा गुरुवर को नमन	3
4.	गीताञ्जली धारा का उद्गम-प्रस्रवण-प्रसार (गीताञ्जली का इतिहास-सहयोगी व सदुपयोग)	4
5.	गुरुदेव की आध्यात्मिक देशना	5
6.	मेरे स्व-मूल्यांकन से मुझे प्राप्त लाभ	6
7.	स्वाध्याय परम तप से मुझे प्राप्त लाभ	6
8.	मेरे अंतिम कार्य हेतु मैं पुरुषार्थरत हूँ	8
9.	मेरे लिए आध्यात्मिक ही परम सत्य क्यों?	8
10.	दुनिया से स्वतंत्र होने का लक्ष्य	9
11.	मुझे स्व (मैं) को ही जानना-मानना-पाना है!	10
12.	मैं स्वयं को पूर्णतः नहीं जाना, अतः मैं अल्पज्ञ हूँ	11
13.	आचार्यश्री कनकनन्दी जी श्रीसंघ की वंदना	12
14.	मैं सभी का कल्याण चाहता हूँ...किन्तु... !?	12
15.	मेरी भावना व आगामी कार्य योजना	13
16.	आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव की आध्यात्मिक विशेषताएँ	14

धर्म-अधर्म मीमांसा

1.	साधुओं की सामूहिक परमात्म प्रार्थना	19
2.	भगवान् आदिनाथ बनाम भारतीय शिक्षा संस्कृति	20

3.	स्व-परमात्मा का वंदन-अभिनंदन स्व-द्वारा	21
4.	उत्तरोत्तर दुर्लभ से दुर्लभतर व दुर्लभतम उपलब्धि	22
5.	लौकिक-आत्मविश्वास व आध्यात्मिक-आत्मविश्वास	23
6.	स्व-आत्मा का परम ज्ञान सबसे कठिन भी सरल भी	24
7.	मोक्ष प्राप्ति-अत्यंत सरल व अत्यंत कठिन	25
8.	कठिन व सरल भी है मोक्षमार्ग	26
9.	भाव विशुद्धि ही परमो धर्म	27
10.	लौकिक व्यवहार से भिन्न/विपरीत भी है आध्यात्मिक	28
11.	श्रमण ही निश्चय से रत्नत्रय-10 धर्म-9 देवता-जीवन्त धर्म	29
12.	आत्मा तेरी अनंत शक्ति	33
13.	सच्ची श्रद्धा की शक्ति	33
14.	बुद्धि से परे भावना व आध्यात्मिकता	34
15.	आध्यात्मिक संस्कृति महान्	36
16.	धन से ही नहीं मिलते हैं-धर्म-ज्ञान-सुख-स्वास्थ्य	36
17.	सुखी होने के धार्मिक-कर्म सैद्धांतिक-वैज्ञानिक कारण (हैप्पी हॉर्मोन)	38
18.	आगम चक्षु श्रमण	39
19.	चारों अनुयोग रूपी धारा के संगममय तीर्थ	40
20.	स्वयं को सुधारना सरल-अन्य को सुधारना कठिन	41
21.	शिक्षा बने सर्वोदयी	41
22.	I.Q. < E.Q. < S.Q. मन (बुद्धि) < दिल (संवेदना) < आत्मा (आध्यात्मिक)	42
23.	शुद्ध-बुद्ध आनंद बनना ही जीव का परम विकास	43
24.	झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक के लक्षण	44
25.	संकीर्ण व विपरीत ज्ञानी	45

26.	धर्म का सच्चा स्वरूप व विकृत रूप	46
27.	हर धर्मावलंबी जीवित है अन्य धर्मी/(विधर्मी) से	47
28.	निर्जीव से लगाव सजीव की उपेक्षा	48
29.	बढ़ती आस, बदलती आस्थाएँ	50
30.	प्रकृतिमय संसार व प्राकृतिक विश्व	52
31.	आगम ज्ञान व शुद्धात्म भावना बिना मुक्ति नहीं	52
32.	मैं आध्यात्मिक दृष्टि से देखता हूँ	53
33.	मेरा शुद्ध स्वरूप ही मेरा सद्धर्म-स्वधर्म	54
34.	संकीर्णता व भौतिकता परे आध्यात्मिकता	55
35.	सभी खुश/(सुखी) रहे ऐसा भाव उत्तम परन्तु सभी को सुखी/(खुश) करना असंभव	56
36.	स्व-शिष्यों को ही आचार्य प्रायश्चित्त देते हैं- व कठोर वचन बोलते हैं, अन्य जनों को नहीं!?	57
37.	धर्म व अध्यात्म में समानता व अंतर	58
38.	संपूर्ण धर्म व अधर्म का स्वरूप	59
39.	भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म	69
40.	स्व-शुद्धात्म श्रद्धान से होता है धर्म का शुभारंभ	71
41.	नवकोटि से होता है धर्म व अधर्म भी	72
42.	स्व-पात्रता से मिलती उपलब्धियाँ	74
43.	पात्र को ही प्राप्त होता है	75
44.	मुझे चाहिए लोकोत्तर ज्ञान-भाव-व्यवहार	76
45.	परिग्रहः महापाप क्यों?	77
46.	आधुनिक आदर्श सज्जन	78

47.	पर दुःख से दुःखी महान् जन तो पर दुःख से संतोषी होते दुर्जन	79
48.	स्वानुभव से ही शुद्धात्मा का यथार्थ कथन संभव	80
49.	स्वात्मा के परिजन से तत्काल व आगामी कालीन लाभ	83
50.	चिदानंद रूपं सिद्धोऽहं शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं	85
51.	करुणा तेरी अमृत धारा	86
52.	जीव का परम विकासवाद	88
53.	अज्ञानी-मोही के विपरीत भाव व व्यवहार	89
54.	रागी द्वेषी मोही के भाव व्यवहार तथा इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन	90
55.	रागी-द्वेषी-मोही-अज्ञानी से विपरीत भाव व काम	91
56.	केवल धन से ही नहीं होता है धर्म! धन के त्याग से होता है धर्म!	92
57.	जीव का शुद्ध स्वरूप या परम विकास	93
58.	जैन धर्म की विशेषता : आत्मा ही बनता है परमात्मा	93
59.	समता परमो धर्म-ध्यान व शांति	94
60.	धर्म परम सत्य-सर्व सुखकर होने पर भी धर्म से घृणादि क्यों?	96
61.	आवश्यकता से अधिक : वर्चस्व व प्रसिद्धि हेतु अधिक पाप करते है नीच मानव	97
62.	सफलता पाते चलो! पाने चलो!	98
63.	सिद्धि बनाम प्रसिद्धि, सिद्धि से अनंत सुख है तो प्रसिद्धि की चाह से अनेक दुःख	99
64.	व्यक्त या शक्ति रूप से मैं हर जीव को भगवान् मानता हूँ	100
65.	अयोग्य शिष्य व सुयोग्य शिष्य	103
66.	विनय का व्यापक स्वरूप व फल	108
67.	मेरी शुद्धात्मा-अनुप्रेक्षा	116

धर्म-अधर्म मीमांसा

साधुओं की सामूहिक परमात्मा प्रार्थना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : ऐ मालिक तेरे बन्दे हम.....)

हे! परमात्मन् तेरे भक्त हम...तेरी भक्ति से बने भगवन्...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...करे तेरा ही चिन्तन-मनन...
हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(ध्रुव)...

तव ज्ञानार्थे पढ़े आगम...तव ध्यानार्थे एकाग्र मन...
तव चिन्तन में प्रमुदित मन...तव प्राप्ति हेतु बने श्रमण...
अरिहंत-सिद्ध व आचार्य...उपाध्याय-साधु तेरे रूप...
तेरा ज्ञान करे...हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(1)...

अर्हन-सिद्ध पूर्ण परमातम...शेष तीनों आंशिक परमातम...
पूर्ण परमात्मा बनना चाहे हम...अतः अन्तर आतम बने हम...
आत्म विशुद्धि समता शांति (से)...हमें बनना है परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(2)...

ख्याति-पूजा-लाभ त्यागे हम...राग-द्वेष-मोह त्यागे हम...
ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा त्यागे हम...कट्टर संकीर्णता त्यागे हम...
विकल्प-संक्लेश त्यागे हम...अपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागे हम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(3)...

तव आराधना-पूजा से...तव प्राप्ति के प्रयत्न से...
अहंकार त्याग स्वानुभवी बने...अशुभ से शुभ-शुद्ध बने हम...
अन्तर आतम से (बने) परमातम...'कनक' शुद्ध रूप परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(4)...

(यह कविता ''ध्यान-सूत्राणि'' (आचार्य माघनन्दीकृत) से भी प्रभावित)

नन्दौड़, दिनांक 28.09.2015, रात्रि 9.30

भगवान आदिनाथ बनाम भारतीय शिक्षा-संस्कृति

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों....., हाँ तुम बिल्कुल ऐसे हो....., है प्रीत जहाँ की रीत सदा.....)

सुनो! सुनो! हे! कथा सुनो...आदिनाथ भगवान् की...
जिससे तुम्हें ज्ञात होगी...महानता भारत भूमि की...2
जय हो...जय हो आदिनाथ/(आदिगुरु)...(ध्रुव)...

भोगभूमि के अंतकाल में...हुए आदिनाथ ऋषभदेव...
कर्मभूमि की व्यवस्था हेतु...ज्ञान दिया है अनेक विध...
असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प...सेवा का ज्ञान दिया उन्होंने...
जिससे सुरक्षा हुई प्रजा की...सभ्यता शुभारंभ किया उन्होंने...(1)...

ब्राह्मी सुंदरी को शिक्षा देकर...नारी शिक्षा का किया शुभारंभ...
शतपुत्रों को भी शिक्षा देकर...प्रथम शिक्षक बने पृथ्वी पर...
प्रथम राजा बनकर किया...राज्य शासन का शुभारंभ...
नीति-नियम व समाज व्यवस्था (हेतु)...न्यायशास्त्र का शुभारंभ...(2)...

अंत में राज्य शासन त्यागकर...निर्ग्रंथ बनकर हुए श्रमण...
ध्यान-अध्ययन-आत्मसाधना से...बने प्रभु सर्वज्ञ तीर्थंकर...
दिव्य ध्वनि द्वारा उनने विश्व को...दिया परम ज्ञान-विज्ञान...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्म से लेकर परमात्म ज्ञान...(3)...

आत्मकल्याण से (लेकर) विश्वकल्याण...हेतु दिया आपने आत्म-ज्ञान...
अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य...अपरिग्रह-अनेकांत-स्याद्वाद...
अंत में सर्व कर्म बंधनों से...मुक्त होकर बने (वे) परम सिद्ध...
सत्य शिव सुंदर स्वरूप...सच्चिदानंद व शुद्ध-बुद्ध...(4)...

आदिनाथ के पुत्र भरत से...आर्यावर्त हुआ भारत देश...
ब्राह्मी के कारण ब्राह्मी लिपि...सुंदरी के कारण गणित ज्ञान...
यह है भारत का प्राचीन इतिहास...तथाहि सभ्यता संस्कृति...
आध्यात्मिक भारतीय संस्कृति...'कनक' की आत्म संस्कृति...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 24.10.2015, मध्याह्न 2.55

स्व-परमात्मा का वन्दन-अभिनंदन स्व-द्वारा

(चाल : तुम दिल की....., गजानना....., क्या मिलिये....., यमुना किनारे....., भातुकली....., विठू माझा....., देहाची तिजोरी.....)

तुझे सदा मेरा वन्दन है...तुझे मेरा अभिनंदन है...
शरीर मध्य में रहने वाला...शुद्ध-बुद्ध आनंदकंद है...(ध्रुवपद)...

तुझे वन्दना श्रद्धा के द्वारा...तुझे वन्दना प्रज्ञा के द्वारा...
ध्यान-अध्ययन-मनन द्वारा...अनुप्रेक्षा व स्मरण द्वारा...

व्रत-नियम व संयम द्वारा...तप-त्याग व सत्य के द्वारा...
सरल-सहज व आर्जव द्वारा...क्षमा-मार्दव व विनय द्वारा...(1)...

मौन (व) एकांत निवास द्वारा...निराडम्बर निस्पृह निर्द्वन्द्व द्वारा...
आकर्षण-विकर्षण रहित द्वारा...अपेक्षा-उपेक्षा रहित द्वारा...

तेरा-मेरा भेदभाव रहित द्वारा...संकल्प-विकल्प रहित द्वारा...
शान्ति-समता-शुचिता द्वारा...ज्ञानानन्द रसपान के द्वारा...(2)...

तेरा ही वन्दन तेरे ही द्वारा...तेरा अभिनंदन तेरे ही द्वारा...
ख्याति पूजा लाभ रहित द्वारा...धन जन मान रहित द्वारा...

पर निरापेक्ष स्व-भावना द्वारा...मञ्च माइक माला रहित द्वारा...
पत्रिका पोस्टर रहित द्वारा...विज्ञापन टी.वी. रहित द्वारा...(3)...

ज्ञान व दाता अभेद द्वारा...पूज्य व पूजक अभेद द्वारा...
अभेद षट्कारक स्वयं के द्वारा...'कनक' वन्दे स्व-आत्मा द्वारा...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 15.09.2015, मध्याह्न 2.40

संदर्भ-

यः परात्मा सएवाहं सोऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्य नान्यः कश्चिदिति स्थिति।। (31) समाधितंत्र

जो परमात्मा हैं वे ही मैं हूँ...जो मैं हूँ वह है परमात्मा।
अतएव मम आत्मा की उपासना...परमात्मा की है उपासना।।

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम्।। (6) परमा. स्तोत्र

परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः।। (20) परमात्मस्वरूप

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरिता।
ते जिनवराण मग्गं अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं।। (19) अ.पाहु.

जो स्व-द्रव्य का ध्यान करते हैं, पर-द्रव्य से पराङ्मुख रहते हैं एवं सम्यक् चारित्र का निरतिचार पालन कते हुए जिनेन्द्र देव के मार्ग में लगे रहते हैं, वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

जिनवरमएण जोई झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं।। (20) अ.पा.

जो योगी ध्यान में जिनेन्द्र देव के मतानुसार शुद्ध-आत्मा का ध्यान करता है वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि जिस ध्यान से निर्वाण प्राप्त हो सकता है उससे क्या स्वर्ग लोक प्राप्त नहीं हो सकता?

उत्तरोत्तर दुर्लभ से दुर्लभतर व दुर्लभतम उपलब्धि

(स्व का विश्वास-ज्ञान-चारित्र ही दुर्लभ)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)
दुर्लभ से दुर्लभ है, जग में भद्रजन होना।
सज्जन होकर गुणग्राही बनकर, नैतिक जन होना।। (स्थायी)

इसी से भी दुर्लभ है अति दुर्लभ, तत्त्व रुचि होना।
श्रद्धापूर्वक आध्यात्मिक, गुरु से तत्त्व श्रवण करना।।

इसी से भी अति दुर्लभ है, तत्त्व ज्ञान का होना।
तत्त्व ज्ञान के सारभूत, स्व आत्म ज्ञान होना।। (1)

इसी से भी दुर्लभ होता है, आत्म-चिन्तन करना।
चिन्तन मनन वैराग्यपूर्वक, व्रती श्रावक होना।।

इसी से भी दुर्लभ होता है, ब्रह्मचारी व्रती होना।
उत्तरोत्तर दुर्लभ होता है, क्षुल्लक-ऐलक भी होना।। (2)

इसी से भी दुर्लभ होता है, श्रमण दीक्षा लेना।
ध्यान अध्ययन व मनन चिंतन से, मौन साधना करना।।

इसी से भी दुर्लभ से दुर्लभ, है निस्पृहधारी होना।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्याग, आत्म साधना करना।। (3)

इसी से भी अति दुर्लभ है, समताधारी साधु होना।
ईर्ष्या द्वेष घृणा व काम तृष्णा, त्यागकर आत्म शांति पाना।।

दुर्लभ से अति दुर्लभ है, आत्म संवित्ति होना।
शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय, स्वात्मा का अनुभव करना।। (4)

संकल्प-विकल्प व संक्लेश, त्यागकर आत्मानुभव करना।
अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा त्यागकर, 'कनक' स्वलीन होना।।

दुर्लभ से अति दुर्लभ है, क्षपक श्रेणी चढ़ना।
चार घाती के नाश करके, केवलज्ञान को पाना।। (5)

योग निरोध से कर्म नष्टकर, निर्वाण पदवी पाना।
यह ही जीव की परम उपलब्धि, तीन लोक व तीन काल में।।

अन्य सभी उपलब्धि परम न होती, तीन लोक व तीन काल में।
जन्म-जरा-मृत्यु रहित, यह दशा सच्चिदानंदमय।। (6)

अनंतज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय, व अमूर्तिक मय।।

नन्दौड़, दिनांक 08.10.2015, रात्रि 9.37 व प्रातः 7.55

लौकिक-आत्मविश्वास व आध्यात्मिक-आत्मविश्वास : स्वरूप व फल

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)
आध्यात्मिक ही है परम सत्य, अन्य सभी लौकिक व्यवहार (है)।

शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा ही स्व-आत्मतत्त्व, अन्य सभी होते पर हैं।। (1)

शरीर मन व इन्द्रिय सत्ता, संपत्ति सभी होते स्व से पर।
शरीर आदि को ही 'मैं' मानना, यह तो मोह या लौकिक व्यवहार।। (2)

लौकिक कार्य हेतु जो विश्वास होता, वह लौकिक आत्मविश्वास है।
लौकिक व्यवहार आत्मविश्वास ही, नहीं परम आत्मविश्वास है।। (3)

इसी में लौकिक कामना-इच्छा, होती जो संसार कारक है।
इसी से होता है कर्मबंध, न होते मुक्ति के कारक है।। (4)

लौकिक पढ़ाई विवाह व्यापार, राजनीति नौकरी आदि हेतु।
होता जो विश्वास (वह) लौकिक विश्वास, नहीं होता है मोक्ष हेतु।। (5)

स्व-शुद्धात्मा का विश्वास ही, यथार्थ में आत्मविश्वास है।
जिससे होता है सम्यग्ज्ञान, चारित्र भी होता सम्यक् है।। (6)

स्व-आत्मा में निहित अनंत ज्ञान, दर्शन-सुख-वीर्य का होता श्रद्धान।
वही यथार्थ से आत्मविश्वास (श्रद्धान) जो कि मोक्ष का मूल कारण।। (7)

आध्यात्मिक आत्मविश्वास का अध्ययन, नहीं होता स्कूल-कॉलेजों से।
नहीं संविधान-कानून-व्यापार, राजनीति या भौतिक विज्ञान में।। (8)

इसका अध्ययन होता आगम में/(से), आध्यात्मिक गुरु के माध्यम से।
यह अध्ययन ही स्व-का अध्ययन, जिसका संबंध/(उद्गम) होता है आत्मा से।। (9)

यह ही परम आध्यात्मिक विद्या, जिससे मिलती परम मुक्ति।
इसलिए ही 'कनकनन्दी' की, आत्मविश्वास में अधिक रूचि।। (10)

नन्दौड़, दिनांक 06.10.2015, रात्रि 8.34

कर्म सैद्धांतिक व आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता

स्व-आत्मा का परम ज्ञान सबसे कठिन भी सरल भी

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., भातुकली.....)

सबसे सूक्ष्म/(कठिन) है सबसे दुरूह है, स्व-आत्मा का ही परम ज्ञान।
यथा आकाश को जानना कठिन, तथाहि मानना तो अति कठिन।। (1)

पत्थर आदि स्थूल भौतिक को, देखना छूना तो अति सरल।
किन्तु परमाणु को जानना देखना, चर्मचक्षु से नहीं सरल।। (2)

परमाणु से भी सूक्ष्म है आत्मा, आकाश से भी अति महान्।
सबसे गूढ़ भी सबसे निकट भी, इसके लिए आकाश भी उदाहरण।। (3)

अनंतानंत कर्म परमाणुओं से, आच्छादित है हर आत्म प्रदेश।
जिससे आच्छादित है आत्मिक गुण, श्रद्धान ज्ञान व आचरण।। (4)

जब तक घातिकर्म चारों का, नहीं हो जाता है पूर्ण क्षय।
तब तक परम ज्ञान न होता, क्षयोपशम बिन न होता आरंभ।। (5)

यथा तम में न दिखती वस्तु, तथाहि घाति कर्मोदय से आत्मा।
निर्मल परिणाम से होता क्षयोपशम, जिससे होता है आत्म ज्ञान।। (6)

इसी हेतु आध्यात्मिक गुरु चाहिए, स्वाध्याय हेतु आगम चाहिए।
मनन-चिन्तन व ध्यान चाहिए, समतापूर्ण आत्म संवेदना चाहिए।। (7)

इसी से आत्मज्ञान होता सरल, अन्यथा न होता आत्मज्ञान।
सत्ता-संपत्ति व डिग्री के द्वारा, नहीं होता है आत्म का ज्ञान।। (8)

चक्रवर्ती भी बनते हैं साधु, परम आत्मज्ञान के हेतु।
यह ही विश्व की परम उपलब्धि 'कनक' चाहे आत्मोपलब्धि।। (9)

नन्दौड़, दिनांक 02.10.2015, रात्रि 9.30

(यथार्थ ज्ञानी व अज्ञानी के भाव-परिणति-परिणाम में अनंत अंतर)

मोक्ष प्राप्ति-अत्यंत सरल व अत्यंत कठिन

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

अभेद रत्नत्रयधारी ज्ञानी मुनि, कर्मक्षय करते उश्वास मात्र में।
उस कर्म को अज्ञानी जन नहीं, क्षय कर पाते है लक्ष-कोटि भवों में।। (1)

ज्ञानी होते है वे महामुनि जो, अभेद रत्नत्रय में रमते है।
इनसे विपरीत वे सभी अज्ञानी जो आत्म स्वभाव में न रमते है।। (2)

तीन गुप्तिधारी महामुनि जब, होते हैं निर्विकल्प अवस्था में।

तब वे होते अभेद रत्नत्रयधारी, श्रेणी आरोहण की अवस्था में।। (3)

उसी अवस्था में होते हैं वे स्व-आत्मा में ही लवलीन।
स्वयं का ही ध्यान, स्वयं में ही रमण, स्वयं का ही करते अनुभवन।। (4)

इसी से ही आत्मविशुद्धि बढ़ती, जिससे बढ़ती है आत्मशक्ति।
जिससे कर्मों का क्षय होता, अंत में मिलती है पूर्ण मुक्ति।। (5)

इसी से मिलती अनेक शिक्षाएँ, आत्मविशुद्धि से ही मिलती मुक्ति।
आत्मविशुद्धि ही है धर्म स्वरूप, जिससे संवर-निर्जरा होती।। (6)

ऐसे महामुनि ही होते हैं ज्ञानी, यह है आध्यात्मिक विधा।
आत्मरमण बिन अन्य ज्ञानी को, कम महत्व देती आध्यात्मिक विधा।। (7)

अतएव आध्यात्मिकता ही है, परमार्थ-ज्ञान-परम श्रेय।
इसलिए ही 'कनकनन्दी' को, आध्यात्मिक ही लगता (है) परम प्रिय।। (8)

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।। (238) प्र.सार

गाथार्थ-अज्ञानी जिस कर्म को एक लाख करोड़ भवों में नाश करता है, उस कर्म को आत्मज्ञानी मन-वचन-काय तीनों की गुप्ति सहित होकर एक उच्छ्वास मात्र में क्षय कर देता है।

नन्दौड़, दिनांक 03.10.2015, रात्रि 11.50

कठिन व सरल भी है मोक्षमार्ग

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : कितना मधुर-कितना मधुर.....)

कितना कठिन...कितना सरल...है ये मुक्ति का मार्ग...लेना होता इसी हेतु जनम कई बार...
हाँऽऽऽ सम्यक् श्रद्धा-प्रज्ञा-संयममय है मोक्षमार्ग...लेना होता...(स्थायी)...

आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान होना...बड़ा ही कठिन है...
इन दोनों के होने पर भी...संयम धारण क्लिष्ट है...हाँऽऽऽ...(1)...

तत्त्वार्थ श्रद्धान..आगम ज्ञान...संयमपना ये तीनों...
यदि न होवे एक साथ...कभी न मिलता है मोक्ष...हाँऽऽऽ...(2)...

मैं ही परमात्मा बनता हूँ...ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त...
अनुभव होने पर ही संसारी...जीव होता है मुक्त...हाँऽऽऽ...(3)...

श्रद्धावान् लभते ज्ञान...गीता में कहते हैं कृष्ण...
यथार्थ धर्म अति दुर्लभ...कहते हैं कनक सूरीवर...हाँऽऽऽ...(4)...

सरल भी है मोक्षमार्ग...जब होता समता भाव...
रत्नत्रय से युक्त होता...श्रमण/(मुमुक्षु) का निज भाव...हाँऽऽऽ...(5)...

भव्य जीव बहिरात्मा से...बनता अन्तर आतम है...
क्रम विकास करता हुआ...बनता परमात्मा है...हाँऽऽऽ...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 02.10.2015, प्रातः 9.15 (अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस)

भाव विशुद्धि ही परमोधर्म

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

भाव विशुद्धि है (ही) परम धरम, भाव विशुद्धि हेतु (ही) धरम पालन।
भाव विशुद्धि बिन धार्मिक कर्म, बीज बिना खेती समान कर्म।। (धृ.)

वस्तु स्वभावमय होता धरम, वस्तु विभावमय होता अधर्म।
शुद्ध-बुद्धमय ज्ञान-आनन्द, समता-शांति ही जीव का धर्म।।

आनंदमय होता जीव स्वभावतः, अतएव हर जीव चाहे आनंद।
स्वभाव होने से जीव का धर्म आनंद, शुद्ध बुद्धमय व ज्ञानानंद।। (1)

यह अवस्था ही है मोक्ष-अवस्था, जीव की परम उच्च शुद्ध अवस्था।
जन्म-जरा-मृत्यु रिक्त अवस्था, सच्चिदानंदमय ध्रुव-अवस्था।।

इसे प्राप्ति हेतु जो होते कर्म, उसे भी कहते (है) व्यवहार धर्म।
दान दया सेवा व परोपकार, सादा जीवन व उच्च विचार।। (2)

पूजा-प्रार्थना व तीर्थ वंदना, तप-त्याग तथा मौन साधना।
ध्यान-अध्ययन व संयम शौच, यह सब भी (है) धर्म की साधना।।

भाव विशुद्धि बिन धर्म न होता, इसी से युक्त कर्म-धर्म भी होता।
अज्ञानी मोही जीव यह नहीं जानते, संकीर्ण कट्टरता से धर्म करते।। (3)

जिससे धर्म में/(से) होते अनेक कुकर्म, भेदभाव पूर्ण अयोग्य कर्म।
भाव विशुद्धि से यह न संभव, 'कनक' चाहे आत्म विशुद्धि धर्म।। (4)
नन्दौड़, दिनांक 03.10.2015, मध्याह्न 3.00

आध्यात्मिक शोधपूर्ण कविता

लौकिक व्यवहार से भिन्न/विपरीत भी है आध्यात्मिक

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., छोटी-छोटी.....)

लौकिक से परे आध्यात्मिक होता...चिदानन्दमय अमूर्तिक होता...
आध्यात्मिक से भिन्न लौकिक होता...अशुद्धमय व भौतिक भी होता...(1)...

आत्म संबंधी होता है आध्यात्मिक...सच्चिदानन्दमय आनन्दकन्द...
स्वयंभू स्वयंपूर्ण अनादि अनिधन...द्रव्य-भाव-नोकर्म का नहीं बंधन...(2)...

आध्यात्मिक 'मैं'/(अहं) में होता शुद्ध आत्मा...'मेरी' का अर्थ होता आध्यात्मिक सत्ता...
लौकिक में व्यवहार इससे भिन्न होता...शरीर को 'मैं' तो 'मेरी' भौतिक सत्ता...(3)...

(आध्यात्मिक) 'मैं'/(अहं) के श्रद्धान बिन धर्म न होता...इसके बिना न ज्ञान-चारित्र होता...
लौकिक 'मैं' से तो मिथ्यात्व होता...इसी 'मैं' में तो अहंकार/(घमण्ड) होता...(4)...

आध्यात्मिक सुख का भोग होता...इन्द्रिय जनित भोग से परे होता...
आध्यात्मिक शक्ति तो होता है वीर्य...लौकिक में होता धातुमय वीर्य...(5)...

स्वात्म-उपलब्धि से होती है 'स्वतंत्रता'/(स्वाधीनता)...संपूर्ण (कर्म) बंधनों से मुक्त 'शुद्धावस्था'...
लौकिक स्वतंत्रता में/(से) कर्मबंध रहता...राजनीति रूप से ही मुक्त होता...(6)...

'निकम्मा' होते हैं सिद्ध परमात्मा...लौकिक में आलसी होते निकम्मा...
'दर्शन' होता है आत्मदर्शन...लौकिक में होता इन्द्रियों से दर्शन...(7)...

आत्मज्ञान ही होता आध्यात्मिक विद्या/(शिक्षा)...लौकिक ज्ञान से परे यह विद्या...
मोक्ष प्राप्ति हेतु होता है पुरुषार्थ...लौकिक कार्य परे यह पुरुषार्थ...(8)...

अशुद्ध भाव 'हिंसा' शुद्ध भाव अहिंसा...शुद्ध भाव धर्म तो अशुद्ध अधर्म...
यह है आध्यात्मिक परम सत्य...लौकिक व्यवहार नहीं परम सत्य...(9)...

शत्रु-मित्र आदि सभी स्वयं ही होता...अभिन्न षट्कारक स्वयं में ही होता...
लौकिक में इससे भिन्न होता...षट्कारक सभी भिन्न ही होता...(10)...

परम सत्य से ही मिलता परिनिर्वाण...परिनिर्वाण ही है 'अमृत धाम'...
शुद्ध-बुद्ध-आनंद यह अवस्था...'कनकनन्दी' की यह निज अवस्था...(11)...

नन्दौड़, दिनांक 26.09.2015, रात्रि 11.50 व 2.47

संदर्भ-

सर्व विवत्तोत्तीर्ण यदा स चैतन्यमचलमाप्नोतिः।
भवति तदा कृतकृत्य, सम्यक् पुरुषार्थ-सिद्धिमापन्नः।। (11) पु.सि.उ.

जिस समय समस्त वैभाविक भावों से उत्तीर्ण या रहित होकर वह पुरुष निष्कम्प चैतन्य स्वरूप को प्राप्त होता है, उस समय समीचीन-पुरुषार्थसिद्धि-पुरुष के प्रयोजन की सिद्धि को पाता हुआ कृतकृत्य हो जाता है।

नित्यमपि निरूपलेपः स्वरूप समवस्थितो निरूपघातः।
गगनमिव परम पुरुषः परम पदे स्फुरति विशदतमः।। (23) पु.सि.उ.

सदा ही कर्मरज से रहित अपने निज रूप में भले प्रकार ठहरा हुआ उपघात रहित अर्थात् जो किसी से घाता न जाय अत्यंत निर्मल ऐसा उत्कृष्ट पुरुष परमात्मा आकाश के समान उत्कृष्ट पद में लोक शिखर के अग्रतम स्थान में अथवा उत्कृष्ट स्थान निज स्वरूप के पूर्ण विकास में स्फुरायमान होता है।

कृतकृत्यः परमपदे परमात्मा सकल विषय विरतात्मा।
परमानन्द निमग्नो ज्ञानमयो नन्दति सदैव।। (224) पु.सि.उ.

कर्मरज से सर्वथा विमुक्त शुद्धात्मा उत्कृष्ट निज स्वरूप पद में कृतकृत्य होकर ठहरता है, समस्त पदार्थों को विषय करने वाला बन जाता है, परमानंद में निमग्न हो जाता है। ज्ञान स्वरूप ही उसका निजरूप है ऐसा वह परमात्मा सदैव आनंद रूप से रहता है।

श्रमण ही निश्चय से रत्नत्रय-10 धर्म
9 देवता जीवन्त धर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)
रत्नत्रयधारी समता साधक मुमुक्षु, श्रमण होते है जीवन्त धर्म।

ख्याति पूजा लाभ संक्लेश रहित, ध्यान-अध्ययन में रत श्रमण।।

''वस्तु स्वभावमय होता है धर्म'', तथाहि ''न धर्मो धार्मिकेर्विना''।
रत्नत्रय से पवित्र होते है श्रमण, मोक्ष न मिले श्रमण बिना।।

''साधुनां दर्शन पुण्य है'', ''तीर्थभूताहि होते हैं साधवः''।
''कालेन फलन्ति तीर्थः'' है किन्तु, ''सद्यः फलप्रद है साधु समागमः''।। (1)

श्रमण ही बनते हैं अरिहन्त, तथाहि अन्त में बनते हैं सिद्ध।
अतः पञ्च परमेष्ठी श्रमण ही बनते, मोक्षमार्ग व मोक्ष पर्यन्त।।

पञ्च महाव्रत पञ्च समिति त्रिगुप्ति, उत्तम क्षमादि होते हैं श्रमण धर्म।
नव देवता षट् आयतन भी होते हैं, प्रकारान्तर रूप में श्रमण।। (2)

रत्नत्रय तो आत्मा का स्वभाव, आत्मा को छोड़ न अन्यत्र सम्भव।
रत्नत्रय ही है मोक्षमार्ग व, इसकी पूर्णता ही होता है मोक्ष।।

ये सब चैतन्यमय होने से, इनसे युक्त श्रमण निश्चय चैत्य।
चैत्य का निवास होता है श्रमण में, अतएव श्रमण ही चैत्यगृह।। (3)

श्रमण के आधीन होते हैं कषाय, अतः श्रमण ही निश्चय आयतन।
श्रमण के आधीन मन वचन काय, अतः मुनि के देह ही आयतन।।

निश्चय से ये सब यथार्थ से होते, व्यवहार से होते चैत्य/(मूर्ति) आदि भी।
भावनापूर्वक मंत्र संस्कार से धातु, पाषाण आदि के चैत्य आदि भी।। (4)

निश्चय-व्यवहार व नाम-स्थापना, द्रव्य-भाव रूप से सत्य जानकर।
आत्मा को परमात्मा बनाना ही होता, परम लक्ष्य अन्य सभी हैं उपकार।।

यथार्थ के बिना केवल प्रतीक से, नहीं मिलता है परम मोक्ष।
मोक्ष हेतु बाह्य-अंतरंग चाहिये, मोक्ष ही 'कनक' का अंतिम लक्ष्य।। (5)

संदर्भ-

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अस्थि धुवं चेयणाभावो।। (17) बोध प्राभृत

उन जिनबिम्ब रूप आचार्य परमेष्ठी को प्रणाम करो, सब प्रकार की पूजा करो, उनके प्रति विनय व वात्सल्य भाव प्रगट करो जिनके कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान तथा निश्चित रूप से चेतना भाव विद्यमान है।

(विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत 'मैं' गीताजंली, 'पूजा से मोक्ष-पुण्य तथा पाप भी' व 'बोध पाहुड़ व समयसार' 'प्रवचनसार' का अध्ययन करें।)

मणवयणकायदव्वा आसत्ता जस्स इंदिया विसया।

आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं।। (5) बोध प्राभृत

मन वचन काय रूप द्रव्य तथा इन्द्रियों के विषय जिससे संबंध को प्राप्त हैं अथवा जिसके आधीन हैं, ऐसे संयमी मुनि का शरीर जिनागम में आयतन कहा गया है।

मय राय दोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता।

पंच महव्यधारी आयदणं महरिसी भणियं।। (6)

मद राग द्वेष मोह क्रोध व लोभ जिसके आधीन है तथा जो पञ्च महाव्रतों को धारण करने वाले हैं, ऐसे महर्षि आयतन कहे गये हैं।

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्ध झाणस्स णाणजुत्तस्स।

सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं।। (7)

विशुद्ध ध्यान से सहित एवं केवलज्ञान से युक्त जिस श्रेष्ठ मुनि के निजात्म स्वरूप सिद्ध हुआ है अथवा जिन्होंने छह द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ अच्छी तरह जान लिए है, उन्हें सिद्धायतन कहा है।

बुद्धं जं वोहंतो अप्पाणं चेइयाइं अण्णं च।

पंच महव्वय सुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं।। (8)

जो ज्ञान युक्त आत्मा को जानता हो, दूसरे भव्य जीवों को उसका बोध कराता हो, पाँच महाव्रतों से शुद्ध हो तथा स्वयं ज्ञानमय हो, ऐसे मुनि को चैत्यगृह जानो।

चेइय बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स।

चेइहरं जिणमग्गे छक्काय हियंकरं भणियं।। (9)

जो चैत्यगृह के प्रति दुष्ट प्रवृत्ति करता है, उसे वह बंध व उसके फलस्वरूप दुःख उत्पन्न करता है और जो चैत्यगृह के प्रति उत्तम प्रवृत्ति करता है, उसे वह मोक्ष तथा उसके फलस्वरूप सुख प्रदान करता है। जिनमार्ग में चैत्यगृह को षट्कायिक जीवों का हितकारी कहा गया है।

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।

णिग्गंथ वीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा।। (10)

सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के द्वारा शुद्ध निर्दोष चारित्र को धारण करने वाले तीर्थंकर की प्रतिमा स्वशासन व परशासन की अपेक्षा दो प्रकार की है, अजंगम रूप है-गति रहित है, निर्ग्रन्थ तथा वीतराग है। जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा मानी गई है।

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होइ वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा।। (11)

जो निरतिचार चारित्र का पालन करते हैं, जिनश्रुत को जानते हैं, अपने योग्य वस्तु को देखते हैं तथा जिनका सम्यक्त्व शुद्ध है, ऐसे मुनियों का निर्ग्रन्थ शरीर जंगम प्रतिमा है। वह वंदना करने योग्य है।

जिणविम्बं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देइ दिक्ख सिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा।। (16)

जो ज्ञानमय हैं, संयम से शुद्ध हैं, अत्यंत वीतराग हैं तथा कर्मक्षय में कारणभूत शुद्ध दीक्षा और शिक्षा देते हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी जिनबिम्ब हैं।

ज्ञानकाण्डे क्रियाकाण्डे चातुर्वर्ण्यपुरः सरः।
सूरिर्देव इवाराध्यः संसाराब्धितरण्डकः।। (सोमदेव सूरि)

जो ज्ञानकाण्ड व क्रियाकाण्ड में शिक्षा व दीक्षा में ऋषि, यति, मुनि व अनगार इन चार प्रकार के मुनियों के अग्रसर हैं तथा संसार रूपी समुद्र से पार करने के लिए नौका के समान हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी देव के समान आराधना करने के योग्य हैं।

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
अरहंतमुद्दा ऐसा दायारी दिक्खसिक्खा य।। (18) बोध प्राभृत

जो तप व्रत और गुण से शुद्ध हैं, वस्तु स्वरूप को जानते हैं तथा शुद्ध सम्यक्त्व के स्वरूप को देखते हैं, ऐसे आचार्य ही अरहन्त मुद्रा हैं-जिनबिम्ब हैं। यह अरहन्त मुद्रा दीक्षा व शिक्षा को देने वाली है।

दढसंजममुद्दाए इंदियमुद्दा कसायदढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया।। (19)

जो संयम की दृढ़ मुद्रा से सहित हैं, जिसमें इन्द्रियों का मुद्रण संकोच है, जिसमें कषायों का दृढ़ मुद्रण-नियंत्रण है एवं जो सम्यग्ज्ञान से सहित हैं, ऐसी मुनिमुद्रा ही जिनमुद्रा है। जिनशासन में यही जिनमुद्रा कही गई है।

नन्दौड़, दिनांक 30.10.2015, रात्रि 8.20

आत्मा तेरी अनंत शक्ति

(आत्म सम्बोधन की कविता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत....., आत्मशक्ति.....)

आत्मा! तेरी शक्ति अनंत, वचने कहि न जाए।
सर्वज्ञ (द्वारा) ज्ञानगम्य तू श्रद्धा-प्रज्ञा से अनुभव होय।।(ध्रुव)।।

तू तो अनादि अविनाशी, अनंत-गुण-गणधारी
तू तो स्वयंभू स्वयंपूर्ण, स्वावलंबी अविकारी
अनंत गुण-पर्याय (से) युक्त, अविभागी स्व-विहारी...आत्मा...(1)

तू (हो) चेतन स्व-पर ज्ञाता, अनंत ज्ञानदर्श धारी
अनंत सुख वीर्यमय तू, अस्तित्व वस्तुत्व धारी
प्रमेयत्व व अगुरुलघुत्व, अमूर्तिक सम्यक्त्व धारी...आत्मा...(2)

अनादि कर्मबंध के कारण, भले तू बना संसारी
चतुर्गति चौरासी लक्ष योनि में, दुःख पाता अति भारी
तथापि तू स्वश्रद्धा ज्ञान चरण से, पाओगे मोक्षपुरी...आत्मा...(3)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-ईर्ष्या, घृणा को त्याग कर तू
समता-शांति व आत्म विशुद्धि से, पाओगे शुद्ध स्वरूप तू
स्व-स्वरूप की उपलब्धि हेतु, 'कनक' प्रयास कर तू...आत्मा...(4)

नन्दौड़, दिनांक 24.10.2015, प्रातः 9.22

सच्ची श्रद्धा की शक्ति

-आ. कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)

श्रद्धा! तेरी महिमा अनंत वचने कहि न जाए।
सर्वज्ञ ज्ञानगम्य तू तो रूचि-प्रज्ञा से अनुभव होय।। (धृ.)

अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ मिथ्यात्व कर्म के...
उपशम या क्षयोपशम, क्षय होने के कारण से...

होती है तेरी उत्पत्ति भव्यों में, पंचलब्धि के योग से...(1) श्रद्धा...

तेरी ही शक्ति से होता है विश्वास/(श्रद्धान) आत्मा-परमात्मा में...
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ पर, निश्चय से स्व-आत्मा में...
स्वयं का होता है ज्ञान-भान, शुद्ध-बुद्ध रूप में...(2) श्रद्धा...

प्रशम-संवेग-अनुकम्पा-आस्तिक्य होते तेरे प्रसाद से...
सच्चे देव-शास्त्र-गुरु प्रति, होती भक्ति तेरी शक्ति से...
अष्ट मद तीन मूढ़ता दूर भी, होती है तेरी शक्ति से...(3) श्रद्धा...

सप्त-भय व सप्त-व्यसन भी, दूर होते है तेरे कारण...
संसार-शरीर व भोग से विरक्ति, होती है तेरे कारण...
पच्चीस मल दोष भी दूर होते, है तेरे कारण...(4) श्रद्धा...

तेरे कारण ही ज्ञान सम्यक् होता, होता हिताहित विवेक...
न्याय-नीति व सदाचार युक्त, होता है जीवन पवित्र...
सनम्र सत्यग्राही उदारचित्त, होता है जीवन उदात्त...(5) श्रद्धा...

तू तो आत्मा की अमूर्तिक शक्ति, इन्द्रिय यंत्रों से परे...
अंधश्रद्धान-अंधानुकरण परे, बुद्धि तर्क से भी परे...
तुझसे ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता, 'कनक' तू भौतिक परे...(6) श्रद्धा...

नन्दौड़, दिनांक 27.10.2015, मध्याह्न 3.00

बुद्धि से परे भावना व आध्यात्मिकता

-आचार्य. कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)

1. **बुद्धि...**

बुद्धि तेरी स्वार्थ प्रवृत्ति...मोही/(रागी) जान न पाए...
तेरे प्रपञ्च से निर्मोही-ज्ञानी...विमुक्त होते ही जाए...बुद्धि...(ध्रुव)...
तेरी प्रवृत्ति सदा है होती...संकीर्ण स्वार्थ साधना...
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री में...तेरी होवे वियोजना...
तर्क-बुद्धि-कार्य-कारण सभी...संकीर्ण स्वार्थ नियोजना...बुद्धि...(1)
रावण-कंस-मुसोलिन-हिटलर...तेरे उदाहरण होते...

भावना व आध्यात्मिक बिन...स्व-पर घातक होते...
धूर्त लोमड़ी शकुनी मंथरा सम...स्वार्थ हेतु ही कार्य करे...बुद्धि...(2)

(चाल : कसमें-वादे.....)

2. भावना...(संवेदनशीलता/दिल)...

भावना तेरी निःस्वार्थ वृत्ति...बुद्धि से भी होती महान्तर...(ध्रुव)...
बुद्धि से परे होती भावना...जो होती संवेदनशील...
स्वार्थ परे भी काम करती यथा...सुहृदयी-वात्सल्यमय...
सेवा-दान-परोपकार सभी...होते हैं भावना पुरस्सर...भावना...(3)
गोमाता व सुहृदय माता...नाइटेंगल मदर टेरेसा...
विनोबा भावे महात्मा गाँधी...अब्राहम लिंकन व ईसा...
तेरे ही उदाहरण होते हैं...नेताजी सुभाषचंद्र जैसा...भावना...(4)

(चाल : तुम दिल की धड़कन में.....)

3. आध्यात्मिकता...

अध्यात्म तेरी अमृत धारा...होती सबसे महान्तम...(ध्रुव)...
भावना परे होता आध्यात्मिक...तू है आत्म स्वभाव...
परम उदार व शुचिता समता...निस्पृहता-अपरिग्रह भाव...
तीर्थंकर-गणधर-सूरी-पाठक...श्रमण तेरे दृष्टांत...अध्यात्म...(5)
उदार पावन भावना से ही...बुद्धि होती है सद्बुद्धि...
आध्यात्मिकता जिसके कारण...होती है अभिवृद्धि...
जिससे आत्म विकास द्वारा...मिलती है अंत में सिद्धि...
अध्यात्म तेरी अमृत धारा...होती सबसे महान्तम...अध्यात्म...(6)
बुद्धि से परे सद्भावना से...बनना है आध्यात्मिक...
जिससे स्व-पर-विश्व का भी...होगा सही विकास...
उसे ही स्वीकारे 'कनकनन्दी'...जिससे हो आत्म विकास...
अध्यात्म तेरी अमृत धारा...होती सबसे महान्तम...अध्यात्म...(7)

नन्दौड़, दिनांक 21.10.2015, रात्रि 9.10

(यह कविता ''प्रवचनसार'' व ''हृदय की शक्ति'' बैप्टिस्ट द पैप से भी प्रभावित है।)
(इस विषय के विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत ''शांति-सफलता=I.Q. < E.Q. < S.Q.'' का अध्ययन करें।)

आध्यात्मिक संस्कृति महान्

(चाल : हाँ तुम बिलकुल ऐसे हो.....)

विश्ववंदित अभिनंदित...आत्मिक संस्कृति प्यारी है...
आत्मवत् भाव हर जीव में...कोई न अपना-पराया है...(ध्रुव)...

सभी जीव हैं सच्चिदानंद व...स्वयंभू-सनातन पूरे हैं...
स्वतंत्र मौलिक अनादि अनंत...समान गुणों को धारे हैं...2...
समान अस्तित्व सभी जीवों में...वस्तुत्व गुण सारे हैं...

आत्मवत् भाव हर जीव में...(1)...

ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य सहित...अनंतानंत गुण पूरे हैं...
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध आदि...त्याग करना है आध्यात्मिक...2...
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-भेद-भाव-द्वंद्व से...रहित होना है आध्यात्मिक...

आत्मवत् भाव हर जीव में...(2)...

किन्तु कर्मवश सांसारिक जीव...होते अशुद्ध व अविकसित...
जिसके कारण हर जीव नहीं...होते हैं समान पूर्णतः...2...
तथापि द्रव्य दृष्टि से कोई...न होते हैं छोटे या बड़े...

आत्मवत् भाव हर जीव में...(3)...

हर जीव को समान मानना...यह है आध्यात्मिक शिक्षा...
आध्यात्म से ही मिले परम शांति...आध्यात्मिक ही अतः महान्...2...
आत्मा से परमात्मा बनने हेतु...'कनकनन्दी' बना है श्रमण...

आत्मवत् भाव हर जीव में...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 22.10.2015, रात्रि 10.32

धन से ही नहीं मिलते हैं-धर्म-ज्ञान-सुख-स्वास्थ्य

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों.....)

सुनो! सुनो! हे! मानव जाति, तेरी जाति की गलत प्रवृत्ति।
तुम मानते हो हर उपलब्धि, भौतिकता से होती है प्राप्ति।। (1)

धर्म ज्ञान व सुख स्वास्थ्य, सब उपलब्धि में भौतिक मुख्य।

धन ही सभी का मूल आधार, ऐसी धारणा है गलती का मूल।। (2)

धर्म तो आत्मा का शुद्ध-स्वभाव, समस्त भौतिक से परे भाव।
धन का उपयेाग धर्म हेतु विधेय, धन ही न होता है धर्ममय।। (3)

धन से ही होता है ज्ञानार्जन, धनार्जन ही है ज्ञान का प्रयोजन।
धारणा ऐसी भी नहीं है (पूर्ण) सत्य, बिना धर्म से भी मिलता ज्ञान।। (4)

अवधि मनःपर्यय केवलज्ञान, आत्मविशुद्धि से मिलते ये ज्ञान।
धन से प्राप्ति कभी न संभव, आत्मज्ञान व भावश्रुत ज्ञान।। (5)

निःस्वार्थी गुरु के उपदेश से, प्रवृत्ति प्रयोग व अनुभव से।
स्व-पर के भी गुण-दोषों से, ज्ञान मिले हैं ध्यान-अध्ययन से।। (6)

ज्ञान-दान होता था भारत में, ज्ञानार्जन (भी) होता था निःशुल्क से।
जिससे भारत विश्वगुरु भी रहा, तीर्थंकर बुद्ध आदि का देश रहा।। (7)

सुख (तो) आत्मा का है निज भाव, भौतिक परे यह शुद्ध-स्वभाव।
राग-द्वेष-मोह व ईर्ष्या से मुक्त, समता-शान्ति व तृप्ति से युक्त।। (8)

भौतिक तो होता (है) जड़ स्वभाव, जड़ में न होता है सुख-स्वभाव।
धन में/(से) ही सुख मानना गलत, सिद्ध में होता है सुख अनंत।। (9)

आत्मा स्वस्थ तो मन भी शांत, शरीर भी होता है सबल-स्वस्थ।
परम औदारिक देह श्रेष्ठ उदाहरण, भोगभूमिज के न होते रोग।। (10)

सातिशय पुण्य स्वस्थ विचार, स्वास्थ्यप्रद आहार-विहार।
प्राणायाम योगासन व नित्य भ्रमण, स्वास्थ्यप्रद है दान दया ध्यान।। (11)

प्रमुख उपायों का हुआ वर्णन, भौतिक उपाय तो होते हैं गौण।
यथा योग्य गौण का होता सहयोग, प्रमुख बिन गौण से न होता कार्य।। (12)

जीवन हेतु यथा भोजन चाहिए, पानी व प्राण वायु आदि चाहिए।
तथाहि धर्म आदि में ऐसा होता, 'कनक' को आत्म-धर्म भाता।। (13)

केवल धन से अनर्थ अधिक, यथा आधुनिक की समस्या अनेक।
सत् पथ में चलो हे! मानव जाति, जिससे हो सर्वांगीण उन्नति।। (14)

गाँधी जयंती पूर्व रात्रि में
नन्दौड़, दिनांक 01.10.2015, रात्रि 11.10

सुख संबंधी शोधपूर्ण कविता

सुखी होने के धार्मिक-कर्म सैद्धांतिक-वैज्ञानिक कारण (हैप्पी हार्मोन)

-वैज्ञानिक आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की.....)

सुखी होने के कारणों को जानो...अंतरंग-बहिरंग स्वरूप मानो...
अंतरंग कारणों को प्रमुख मानो...बहिरंग कारणों को निमित्त जानो...(स्थायी)...

जीवों का स्वभाव तो अनंत सुख...कर्म के बंधनों से मिलता दुःख...
कर्मक्षय से मिले अनंत सुख...क्षयोपशम से मिले आंशिक सुख...

बयालीस (42) सातादि पुण्योदय के कारण...सुख हेतु मिले अन्तः बाह्य कारण...
समता-शांति-पवित्रादि अंतरंग कारण...दान-दया-सेवादि भी अंतरंग कारण...(1)...

विज्ञान भी शोध रहा निम्न कारण...पचास प्रतिशत (50%) सुख हेतु जींस कारण...
जिससे विभिन्न हार्मोंस का होता स्राव...जिससे होता है सुख का अनुभव...

कार्य की सफलता या प्रशंसा के कारण...देह में स्राव होता हार्मोन 'डोपामिन'...
जिससे सुख का भी अनुभव होता...'चिड़चिड़ापन' भी दूर हो जाता...(2)...

निःस्वार्थ सेवा से स्राव (होता) 'ऑक्सीटोसिन'...जिससे सुख का होता अनुभवन...
होती संतुष्टि व सुधरता है संबंध...तनाव दूर होता बढ़ता है आनंद...

'सेरोटोनिन' स्राव से मूड उत्तम होता...क्रोध का भाव भी क्षीण है होता...
प्रसन्नता से बढ़ता है यह हार्मोन/(सेरोटेनिन)...तथाहि भ्रमण व नारियल-केला भक्षण...(3)...

'प्रोजेस्टेरोन' 'एस्ट्रोजन' संतुलित होता...तब मूड का भी संतुलन होता...
आत्मविश्वास बढ़े-क्रोध होता है क्षीण...सात्विक जीवन से बढ़ते दोनों हार्मोन...

शांतिप्रद संगीत (श्रवण) व उत्तम प्रिय काम...व्यायाम प्राणायाम योगासन ध्यान...
सात्विक मधुर व स्निग्ध भोजन...उत्तम भाव-कार्य सुखी होने के कारण...(4)...

उत्तम भाव व कार्यों के कारण...पुण्य कर्मों का होता है बंधन...
आत्मविशुद्धि से मिलता आनंद...'कनकनन्दी' का लक्ष्य परम आनंद...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 29.09.2015, रात्रि 12.25

आगम चक्षु श्रमण

(राग : तेरे प्यार का आसरा....., छोटी-छोटी गैया.....)

आगम से परम/(संपूर्ण) सत्य का ज्ञान होता, पूर्ण नहीं तो आंशिक ज्ञान होता।
सर्वज्ञ प्रतिपादित होता है आगम, सतत अध्ययन भी करते श्रमण।। (स्थायी)

परम सत्य को सर्वज्ञ ही जानते, दिव्य ध्वनि द्वारा प्रतिपादन करते।
गणधर आदि रचते हैं आगम, परोक्ष केवलज्ञान होता (है) आगम।। (1)

अतएव आगम से सभी ज्ञान होता, अनुभव से आत्म परिज्ञान होता।
आत्मा के ज्ञान से अनात्म ज्ञान होता, जिससे विश्व का भी परिज्ञान होता।। (2)

इसी से ही भेदज्ञान होता विशेष, आत्म-अनात्म का भी भेद विशेष।
आत्मा ही सच्चिदानंद परम आतमा, द्रव्य भाव नोकर्म रहित शुद्ध आतमा।। (3)

इसी से ही होता सम्यग्दर्शन, जिससे होता है ज्ञान-सुज्ञान।
जिससे आचरण भी होता सम्यक्, जिससे होता है मोक्ष मार्ग।। (4)

आगमानुसार अतः सोचते श्रमण, ध्यान-अध्ययन व मनन-चिंतन।
आहार-विहार व प्रवचन करते, इसलिये 'कनक' को आगम सुहाते।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 28.09.2015, अपराह्न 5.00

संदर्भ-

आगम चक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू।। (234) प्र.सा.

साधु महाराज आगम के नेत्र से देखता है। सर्व संसारी जीव इन्द्रियों के द्वारा जानने वाले हैं और देवगण अवधिज्ञान से जानने वाले हैं। परन्तु सिद्ध भगवान् सब तरफ से सब देखने वाले हैं।

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जएहिं चत्तेहिं।
जाणंति आगमेण हि पेच्छित्ता ते वि ते समणा।। (235) प्र.सा.

नाना प्रकार गुण पर्यायों के साथ सर्व पदार्थ आगम से सिद्ध है, आगम के द्वारा उन सबको यथार्थ देखकर जो जानते हैं वे ही साधु हैं।

चारों अनुयोग रूपी धारा के संगममय तीर्थ

-आचार्य कनकनन्दी

(तर्ज : गंगा तेरी धारा अमृत.....)

विद्या तेरी पावन धारा, अविरल बहती जाए।
चार अनुयोग धारा संगम से, पावन तीर्थ बन जाय।। (ध्रुव)

प्रथमानुयोग रूपी धारा में बहते है विविध दृष्टान्तपुरा।
पापी पुण्यशाली व पंच परमेष्ठी के, बहते दृष्टान्तपुरा।
इसी के द्वारा प्राथमिक विद्यार्थी (मुमुक्षु), सीखते धर्म की धारा।। (1)

प्रथम धारा मिलती जब, करुणानुयोग रूपी धारा में।
करण-परिणाम के मंथन से, विशुद्धि बढ़ती आत्मा में।
जिससे दृष्टांतों का परिज्ञान होता है सही-सही में।। (2)

दोनों धारा में जब मिलती, चरणानुयोग रूपी धारा में।
साधु-उपाध्याय-आचार्य बनते, विशुद्धि जिनमें।
विशुद्धि रूपी धारा प्रवाह से, गुणस्थान बढ़े उनमें।। (3)

तीनों धारा बहती जब, द्रव्यानुयोग रूपी धारा में।
क्षपकश्रेणी आरोहण करके, कर्मक्षय करते हैं ध्यान से।
अरिहंत व सिद्ध बनकर, स्व-द्रव्य को पाते स्वयं में।। (4)

ऐसी धारा संगम से ही, बनते है पावन तीर्थ।
इसी तीर्थ के माध्यम से ही, तरते हैं संसार चक्र।
इसी पावन तीर्थ के द्वारा 'कनक' करे आत्मविशुद्ध।। (5)

प्रथमानुयोग रूपी दृष्टांतों से, करणानुयोग से करो प्रमाण।
चरणानुयोगमय आचरण से, द्रव्यानुयोगमय करो रमण।
जिससे मिलेगा अनंत सुख, ज्ञान दर्शन वीर्यमय।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 10.10.2015, रात्रि 9.30

स्वयं को सुधारना सरल-अन्य को सुधारना कठिन

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

मुझको ही मेरे द्वारा 'मैं' समझाऊँ, मुझको ही मैं सदा प्रसन्न करूँ।
मुझको ही मेरे द्वारा सुधार/
(पावन, विशुद्ध) करूँ, अन्य हेतु (ही) ये सब कभी न करूँ।। (1)

स्वयं को अभी तक (मैं) न सुधार पाया, इसलिये सर्वज्ञ (अभी) न बन पाया।
इसी से सिद्ध होता मैं दोष सहित, अतः पहले बनना मुझे दोष रहित।। (2)

अन्य हेतु अभी तक मैं किया काम, पर उपदेशी पाण्डित्य (सम) काम।
तानाशाही सम अधिकार के काम, धोबी या गधे के सम अन्य के काम।। (3)

आत्महित सह (मैं) परहित भी करूँ, आत्महित पहले पर (हित) बाद में करूँ।
स्व-दीपक (को) पहले मैं प्रकाश करूँ, पर दीपक (भी) बाद में प्रकाश करूँ।। (4)

तीर्थंकर भी करते हैं इसी प्रकार, मेरी भी भावना है इसी प्रकार।
अन्य सभी उपाय न उत्तम होते, राग द्वेष मोहादि से युक्त होते।। (5)

देश-विदेशों के साहित्य से यह पढ़ा/(सीखा), प्रायोगिक अनुभव से यह मैं पाया।
राग द्वेषी मोही को सुधारना कठिन, स्व को सुधारना 'कनक' को नहीं कठिन।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 18.09.2015 (उत्तमक्षमा धर्म), रात्रि 8.40

शिक्षा बने सर्वोदयी

(साक्षरी से श्रेष्ठ सक्षम व सदाचारी)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., भातुकली.....)

साक्षरी हो या निरक्षरी ज्ञानी बनो सब सदाचारी।
अक्षर तो केवल चिह्न होते, प्रतीक ही यथार्थ नहीं होते।। (1)

तोता सम पाठ रटने से, कोई न होता है महान्।
आचरण विहिन होने से, साक्षरी होता राक्षस सम।। (2)

तीर्थंकर बुद्ध व कबीर, स्कूल-कॉलेज में नहीं पढ़े।

तथापि साक्षरी से महान् बने, स्व-आत्मा का पाठ पढ़े।। (3)

सरकारी स्कूल में पढ़कर भी, गाँवों के अनेक विद्यार्थी।
महान् भी बने है सामान्य परिवार के होकर के भी।। (4)

पैदल भी स्कूल गये पढ़े नहीं वे ट्यूशन या कोचिंग।
कृषि शिल्प पशुपालन आदि, गृहकार्य में भी करके सहयोग।। (5)

यथा वैज्ञानिक (के) राधाकृष्णन् वैज्ञानिक सी.एन.आर. राव।
डॉक्टर रमाकांत पांडा, डॉक्टर देवी शेट्टी सर्जन।। (6)

उद्योगपति नारायणमूर्ति तथा अम्बानी धीरू भाई।
चीफ जस्टिस एच.एल. दत्तू कापड़िया न्यायमूर्ति।। (7)

फैशन-व्यसन अभी तो बनी, पढ़ाई में नहीं है गुणवत्ता।
शोध-बोध व आविष्कार में भी नहीं है गुणवत्ता।। (8)

आलसी प्रमादी व परावलंबी बन रहे है विद्यार्थी।
सेवा सहयोग सदाचार विहिन, बन रहे है शिक्षार्थी।। (9)

अठारह प्रतिशत (18%) इंजीनियर के, छात्र होते नौकरी योग्य।
सामान्य ग्रेजुएट्स की योग्यता तो, इसी से भी अति न्यून।। (10)

शिक्षा अभी बनी है व्यापार, तथाहि भ्रष्टाचार का केन्द्र।
सर्वोदय हेतु बने शिक्षा, इसी हेतु 'कनक' बनाया काव्य।। (11)

नन्दौड़, दिनांक 20.09.2015, रात्रि 9.42

I.Q. < E.Q. < S.Q.

मन (बुद्धि) < दिल (सम्वेदना) < आत्मा (आध्यात्मिक)

दिल से ही बुद्धि सही होती है एवं आध्यात्मिकता बढ़ती है

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : चलो दिलदार चलो.....)

चलो दिलदार चलो...बुद्धि से पार चलोऽऽऽ
आध्यात्मिक भाव धरो...क्षुद्र भौतिकता छोड़ोऽऽऽ...(ध्रुव)...

बुद्धि तो मतिज्ञान...क्षुद्र भौतिक ज्ञान...

इससे परे ज्ञान...होता है श्रुतज्ञान/(भाव ज्ञान)...

श्रुत ज्ञान से होता...स्व-सम्वेदन ज्ञान...
जिससे होता है...सही आत्म-श्रद्धान...चलो...(1)

आत्म श्रद्धान से होता...ज्ञान भी सही ज्ञान...
जिससे होता है...हिताहित का ज्ञान...

दया-दान व सेवा...परोपकार काम...
नैतिक (व) सदाचार...सम्वेदना पूर्ण काम...चलो...(2)

संकीर्ण स्वार्थ नशे...उदार भाव जगे...
कट्टरता भाव नशे...कोमल भाव जगे...

निर्णय भी सही होता...पक्षपात न होता...
मैत्री-प्रमोद जगे...कृपा-माध्यस्थ/(समता) जगे...चलो...(3)

आत्म विशुद्धि बढ़े...आत्मानुभव बढ़े...
ज्ञानानन्द रस झरे...कर्म कलंक नशे...

आत्म-उपलब्धि होती...परम शांति मिलती...
आत्मा की शुद्धि स्थिति...'कनक' की निज स्थिति...चलो...(4)

नन्दौड़, दिनांक 11.10.2015, प्रातः 9.20
(यह कविता ''हृदय की शक्ति'' लेखक-बैप्टिस्ट द पैप से भी प्रभावित है।)

(नव वर्ष में परम विकास का संकल्प/(लक्ष्य))

शुद्ध-बुद्ध आनंद बनना ही जीव का परम विकास

-आ. कनकनन्दी

(चाल : दुनिया में रहना है तो.....)

लक्ष्य धरो भाई! लक्ष्य करो! महान् पावन लक्ष्य (को) करो!
आत्म विकास का लक्ष्य धरो! शुद्ध-बुद्ध-आनंद का लक्ष्य धरो!

'शुद्ध-बुद्ध-आनंद' ही तेरा स्वरूप 'सच्चिदानंद' है तेरा स्वरूप।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य अजर अमर व सत्य स्वरूप।।

तन-मन-इन्द्रिय न तेरा स्वरूप जन्म-जरा-मरण न तेरा स्वरूप।

राग द्वेष मोहादि न तेरा स्वरूप सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि न तेरा स्वरूप।।

ये सभी तेरे है विकार रूप कर्म जनित है संसारी रूप।
कर्म परतंत्रता का यह स्वरूप सांसारिक दुःखों का जनक रूप।।

इसीसे न होगा तेरा पूर्ण विकास इसी रूप मानना मोह स्वरूप।
इसी में राग द्वेष मोह बंधन रूप इसी से परे होना तेरा विकास।।

शांति-कुंथु-अरहनाथ तीनों ही तीन-तीन पदवी धारी भी हुए।
आत्म विकास हेतु त्यागे चक्री पद शुद्ध-बुद्ध होकर पाये परम पद।।

चक्रवर्ती (भी) यदि भोग/(पद) सहित मरे नरक गति के दुःखों को भरे।
मुमुक्षु मानव (यदि) आत्म विकास करे, शुद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष को वरे।।

शरीर पोषण सत्ता संपत्ति अर्जन भोगोपभोग व फैशन-व्यसन।
ये सभी नीच पशु-पक्षी भी करते अज्ञानी मोही इसे (ही) सर्वस्व माने।।

मोक्ष पुरुषार्थ को ही प्रमुख करो! धर्म पुरुषार्थ से इसे वरण करो।
अर्थ व काम को हेय तू मानो! कमल समान निर्लिप्त बनो।।

शक्ति अनुसार पुरुषार्थ करो! भावना से लक्ष्य की ओर बढ़ो!
लक्ष्य प्राप्ति तक बढ़ते ही चलो! 'कनक' तू स्व-आत्म विकास करो!

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 30.12.2016 (ईसाई नव वर्ष के पूर्व)

झूठे धार्मिक व सच्चे धार्मिक के लक्षण

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)
अज्ञानी मोही अधर्मी के सही स्वरूप को जानो।
इनसे विपरीत ज्ञानी धार्मिक को भी पहचानो।। (ध्रुव)

अर्थ हेतु धर्म करते वे, न करते परमार्थ हेतु।
पुण्य तो भोग हेतु करते, न चाहिए मोक्ष हेतु।।

ख्याति पूजा लाभ हेतु करते हैं तप-त्याग।
समता शांति व आत्म विशुद्धि, नहीं होता है वैराग्य।। (1)

आडम्बर व दिखावा, करते है अहंकार व प्रदर्शन।

उच्च विचार व सादा जीवन, नहीं करते आत्म दर्शन।।

उपदेश करते है बनाने, हेतु अन्य को धार्मिक।
भाव व्यवहार से रहते है वे अधार्मिक जन।। (2)

ईर्ष्या द्वेष व घृणा तृष्णा, आदि को न त्यागते।
दिखावा रूपी धर्म से, स्वयं को धर्मी मानते।।

देखा देखी तो करते हैं, न जानते हैं सत्य-असत्य।
रूढ़ि परम्परा को तो ढोते, न जानते है हित-अहित।। (3)

पर्व व धर्म तीर्थ-क्षेत्र में करते है धार्मिक क्रिया।
दया दान व शुचि सेवा को, नहीं जानते/(मानते) हैं धर्म क्रिया।।

धर्म तो आत्मा का स्वभाव, जो होता है पावनमय।
पावन बनने हेतु करे 'कनक' धर्म का पालन।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 21.09.2015, रात्रि 8.25
यह कविता अश्विन के कारण बनी।

संकीर्ण व विपरीत ज्ञानी

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., भातुकली.....)

संकीर्ण या विपरीत ज्ञानी, होते हैं अधिकांश जन।
सूक्ष्म व व्यापक परम सत्य को, नहीं जानते हैं मूढ़ जन।। (ध्रुव)

यथा आकाश को नीला जानते, देखते हैं गोलगुम्बजाकार।
तन-मन-इन्द्रियों को 'मैं' मानते इसमें करते ममकार।।

सूचना को ही ज्ञान मानते, देखा हुआ को ही मानते सत्य।
पढ़ना/(वाचना) को ही स्वाध्याय मानते, लोकाचार को ही मानते सत्य।। (1)

भौतिक लाभ को ही लाभ मानते, प्रसिद्धि को ही मानते श्रेष्ठ/(श्रेय)।
आयु पदवी या डिग्री अथवा, सत्ता संपत्ति को ही मानते श्रेष्ठ।।

रूढ़ि परम्परा दिखावा धर्म को ही, जानते/(मानते) व करते आचरण।
आत्म स्वभावमय समता शांति, पवित्रता को न जानते/(मानते) धर्म।। (2)

लौकिक स्वार्थ के सहयोगी को ही, मानते हैं स्व-उपकारी।
नैतिक आध्यात्मिक उपकारी को, नहीं मानते परम-उपकारी।।

इन्द्रिय जनित सुख को ही जानते, मानते व भोगते उसे।
आध्यात्मिक सुख को नहीं जानते, मानते नहीं भोगते भी उसे।। (3)

तथाहि हित-अहित व पुण्य, पाप को भी नहीं जानते।
सभ्यता-संस्कृति नीति-नियम हेय-उपादेय नहीं जानते।।

भक्ष्य-अभक्ष्य व करणीय, अकरणीय को भी नहीं जानते।
कषाय-लेश्या व संज्ञा से, प्रेरित हो कार्य करते।। (4)

आहार निद्रा व भय मैथुन, परिग्रह व स्वार्थवश।
जानते-मानते व करते हैं, शरीर इन्द्रिय व मन के वश।।

आत्मविश्वास व ज्ञान चारित्र, युक्त होते है अत्यल्प जन।
वे ही होते हैं महान् जन, 'कनक' को मान्य ऐसे ही जन।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 22.09.2015, मध्याह्न 2.40

धर्म का सच्चा स्वरूप व विकृत रूप

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)
परम पावन व परम उदार, धर्म होता है आध्यात्मिकमय।
किन्तु संकीर्ण-स्वार्थी मोहीजन, धर्म को करते विपरीतमय/(विषयमय)।। (स्थायी)

देवों को संतोष करने के लिए, करते हिंसा व बलिदान।
ढोंग आडम्बर व मिथ्याचार, औरों का करते शोषण।।

ईर्ष्या द्वेष व घृणा करते, अन्य धर्मी से अत्याचार।
आक्रमण युद्ध हत्या करते, महिलाओं से बलात्कार।। (1)

श्रद्धा के नाम पर सेवते अंधश्रद्धा, तथाहि करते प्रचार-प्रसार।
तो भी स्वयं को सच्चा-अच्छा मानते, और करते पापाचार।।

पावन भाव-व्यवहार बिना, ढोंग-पाखण्ड से चाहते सुख।
बाह्य-आडम्बर व क्रियाकाण्ड से, चाहते स्वर्ग व मोक्ष सुख।। (2)

सांसारिक कार्य हेतु परिश्रम करते, मोक्ष हेतु न करते काम।
बिना परिश्रम ढोंग मात्र से, चाहते मिले स्वर्ग व मोक्ष-धाम।।

बोलते भाव को अच्छा करो, किन्तु न जानते भाव-स्वरूप।
चाहते दूसरे अच्छा बने, स्वयं को न बनाते पावन-स्वरूप।। (3)

'धर्म से होता है विश्व कल्याण', ऐसा करते हैं बाह्य प्रचार।
स्वयं को इसका न ज्ञान होता, न पालते स्वयं सदाचार।।

धर्म का दुरुपयोग करते हैं, सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि हेतु।
फैशन-व्यसन व भोगोपयोग, ईर्ष्या द्वेष व घृणा हेतु।। (4)

धर्म होता है आत्म स्वभाव, जो है सत्य-समता व सदाचार।
अहिंसा अचौर्य व ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह शुचिता व आत्म विचार।।

इसी से भिन्न न होता धर्म, भले क्रिया-काण्ड हो धार्मिक।
आत्म विशुद्धि हेतु धार्मिक क्रिया, 'कनक' को मान्य सच्चे धार्मिक।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 12.10.2015, रात्रि 11.55
(यह कविता ब्र.डॉ. अजय (संघस्थ आचार्य कनकनन्दी) के कारण बनी।)

हर धर्मावलंबी जीवित है अन्य धर्मी/(विधर्मी) से

(अन्य धर्मावलंबी से दुष्ट व्यवहार करने वाले अधर्मी व पशु से भी नीच)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)
हर धर्मावलंबी अन्य धर्मी/(विधर्मी) से जीवित रहते (है)।
भोजन वसन (वस्त्र) आवास हेतु सहयोग भी लेते (है)।। (ध्रुव)

भोजन हेतु अनाज, फल, सब्जी व मसाला आदि।
घास वृक्ष व लता गुल्म से पाते है अनाज आदि।।

दूध व घी दही मठ्ठा पाते है दूधारू पशुओं से भी।
कृषि व भार वहन आदि करते है पशुओं से भी।। (1)

वसन (वस्त्र) हेतु भी अवलंबित कपास/(वृक्ष) आदि से।

आवास हेतु भी अवलंबित है वृक्ष आदि से।।

तथाहि औषध व तेल गृहोपकरण आदि के लिए।
आवलंबित हर धर्मावलंबी अन्य धर्मावलंबी से।। (2)

ऐसा ही मानव के मध्य में भी होता है व्यवहार।
कृषि व्यापार शिक्षा उद्योग आदि में होता है व्यवहार।।

वृक्ष से लेकर हर पशु तक प्रायः नहीं मानते मानव धर्म।
इसी हेतु वे हर धर्मावलंबी/(मानव) की दृष्टि से हेाते अधर्मी/(अन्य धर्मी)।। (3)

तथापि संकीर्ण कट्टर-क्रूर जो धार्मिक जन होते।
वे अन्य धर्मी मानव के साथ दुर्व्यवहार भी करते।।

अन्य धर्मावलंबी के अभाव से कोई भी धर्मावलंबी नहीं बचेंगे।
तथापि अन्य धर्मावलंबी से, अधर्मी पूर्ण व्यवहार करते।। (4)

वृक्ष से लेकर पशु के अभाव से न बचेंगे मानव।
अतः किसी भी धर्मावलंबी प्रति न करो है दुष्ट भाव।।

क्षुद्र व निकृष्ट जीवों के प्रति भी, जब नहीं करणीय दुष्ट भाव।
तब अन्य धर्मी मानव प्रति, क्यों करते हो दुष्ट भाव।। (5)

वृक्ष से लेकर पशु तक जब, करते हैं मानवों के उपकार।
तब स्वयं को श्रेष्ठ धार्मिक मानने वाले/(मानव) क्यों करते है अपकार।।

वे मानव नहीं है धार्मिक, तथा नहीं है पशु समान।
वे पशु से भी नीच हैं, 'कनक' का यह शोध-ज्ञान।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 06.09.2015, रात्रि 8.45

निर्जीव से लगाव सजीव की उपेक्षा

-आ. सुवत्सलमती

(चाल : कभी तो ये गुरुवर/(बाबा).....)
मानव को क्या हुआ, अब भौतिक बन गया।
सजीव से (भी) ज्यादा, जड़/(निर्जीव) प्यारा हो गया।। (ध्रुव)

फ्रिज बंद है, नारी को चिंता है।

कलर टी.वी. नहीं, नारी को ये गम है।।

न्यू फैशन साड़ी नहीं, इसका दुःख (भारी) है।
धन-संपत्ति/(आभूषण) कम है, इसका मलाल है।।

स्कूटर पुराना है, पति को दुःख है।
बिजली के बिल की, महाशय को चिंता है।।

मुवी चैनल नहीं, दादी को दुःख है।
पेंशन बंद है, दादा को चिंता है।।

टच स्क्रीन फोन नहीं, बेटा नाराज है।
बोझिल पढ़ाई से, बेटी को टेंशन है।।

सद्बुद्धि इनको मिले, यह भावना मेरी।
निर्जीव से अधिक, सजीव को महत्व दे।।

चौका लगाने की नारी की भावना हो।
बेटी-बेटे को संस्कारित करना हो।।

जड़ वस्तु से ज्यादा जन्म-दाता की चिंता हो।
उनकी सेवा में जीवन अर्पण हो।।

प्रदर्शन नकल बिना, भावना का महत्व हो।
मोबाईल से ज्यादा, परिवार का महत्व हो।।

जहाँ सहयोग होता, सहृदयता होती है।
गुरुजन उसको ही गृह मंदिर कहते है।।

निर्जीव से ज्यादा सजीवों के साथ रहो।
आपस में प्रेम से सभी जीवों के साथ रहो।।

प्रभु चरणों में विनती है, सद्बुद्धि सब की होय।
मैत्री दया/(करुणा) के भाव सह, आनंद मंगल होय।।

नन्दौड़, दिनांक 12.10.2015, रविवार

बढ़ती आस, बदलती आस्थाएँ

-डॉ. अशोक पनगड़िया

पिछले एक-दो दशक में मानवीय संवेदनाओं और व्यवहार में जबरदस्त बदलाव देखा जा रहा है। स्वाभिमानी, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित व्यवस्था पर भौतिकतावाद हावी होता जा रहा है। जहाँ वैश्विकरण ने अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में अद्भुत भूमिका निभाई है वहीं लोगों ने अपने स्वास्थ्य, मन की शांति और खुशी की बड़ी कीमत भी चुकाई है। इसका प्रमाण खराब जीवनशैली की वजह से तेजी से बढ़ रही तरह-तरह की बीमारियों में देखा जा सकता है।

व्यवहार में आता परिवर्तन-भारत, दुनिया के सबसे भ्रष्ट और मानसिक अशांति से त्रस्त देशों की सूची में ऊपर चढ़ता दिखाई दे रहा है। परिवर्तन के इस दौर में अजीब सा बदलाव देखा जा रहा है। आज ईश भक्त भी शेयर बाजार के कारोबारियों की तरह अपने मतलब और लाभ के लिए अलग-अलग देवी-देवताओं के भाव चढ़ा देते हैं। अधिक से अधिक लाभ की चाह में कभी किसी देवी-देवता को अधिक पूजनीय माना जाने लगता है तो कभी कोई अन्य लोकप्रिय हो जाता है। क्या एल्विन टोफ्फलर की पुस्तक-फ्युचर शॉक में लिखी उनकी भविष्यवाणी सच होने लगी है? नियंत्रित अर्थव्यवस्था से मुक्त व्यापार व्यवस्था की ओर बढ़ रहे परिवर्तन के इस दौर के बारे में उन्होंने लिखा था कि स्थायित्व की मौत, भरोसे की मौत और नौकरशाही के खात्मे के रूप में हम धीरे-धीरे मानवीय और सामाजिक व्यवहार में बदलाव देखेंगे। उनकी ये सोच आज उम्मीद से कहीं ज्यादा व्यापक रूप में तेजी से सच प्रतीत हो रही है।

बदल रहे युवाओं के आदर्श-विज्ञान, मानव के समान रोबोट या क्लोन बनाने के कगार पर है, साथ ही स्टेम सेल तकनीक और आनुवांशिकी अनुसंधान में हो रही प्रगति से चमत्कारिक उपचार भौतिकवादी मानसिकता का प्रदूषण की खोज की संभावना बढ़ रही है और इसके साथ ईश्वर के कार्यक्षेत्र में दखल देने के प्रयास हो रहे हैं। वहीं इसके विरोधाभास में पृथ्वी के बढ़ते तापमान की वजह से रेगिस्तान में ओले गिर रहे हैं तो कहीं शीतोष्ण कटिबंध इलाकों में तापमान बढ़ रहा है। जहाँ, भारत और चीन की अर्थव्यवस्थाएँ आर्थिक सुपरपावर बनने के लिए एक-दूसरे से टक्कर कर रही हैं, वहीं अमरीका गंभीर मंदी के दौर से जूझ रहा है। आज समाज में

एक नये तरह का वायरस-भौतिकतावादी मानसिकता लोगों के दिमाग को प्रदूषित कर रहा है। लोभ, व्यापार का आवश्यक हिस्सा बन चुका है। **महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू और लाल बहादुर शास्त्री जैसे नेताओं की जगह आज बच्चन, खान और मल्लिका सहरावत ने ले ली है। वे युवाओं के आदर्श बन गये है।**

धर्म भी अछूता नहीं-दिलचस्प और उल्लेखनीय ढंग से परिवर्तन की इस लहर से भारत जैसे देश में धर्म भी अछूता नहीं रहा है। भारत में देवी-देवता का इस्तेमाल जिस तरह से मंदिर उद्योग के रूप में लिया जा रहा है उसके परिप्रेक्ष्य में टोफ्फलर का सिद्धांत सटीक प्रतीत होता है। एक मजेदार तथ्य ये भी है कि कुछ दशक पहले राम-कृष्ण और दुर्गा माँ के असंख्य भक्त हुआ करते थे लेकिन अब उनकी जगह गणेश, हनुमान और शनिदेव ने ले ली है। आज के इस भौतिकतावादी संसार में, सभी तरह की सुख-सुविधा और समृद्धि की चाह रखने वाले भक्तों के लिए भगवान गणेश निश्चित रूप से सर्वप्रिय देवता हैं। साथ ही लोगों को शक्तिशाली और शूरवीर मित्र की तलाश रहती है ऐसे में हनुमान जी से बेहतर और कौन हो सकता है जो भक्तों के नैतिक और अनैतिक रास्तों से अर्जित संपत्ति की रक्षा कर सके। जब इन दोनों समस्याओं का समाधान हो जाता है तब भक्तों को देश के इंस्पेक्टर राज का भय सताता है तब याद आते हैं शनिदेव सबसे ज्यादा भयभीत करने वाले, पूजा-अर्चना करके उन्हें भी शात और प्रसन्न रखना जरूरी है इसलिये प्रत्येक शनिवार को शनि मंदिरों के बाहर तेल चढ़ाने वाले भक्तजनों की लंबी कतारें दिखाई देती हैं।

विफलताओं का बोझ-आस्थाओं की परिवर्तन लहर का इतिहास भारतीय में पीढ़ियों से जुड़ा हुआ है। **सबसे उन्नत नालंदा काल था, फिर मुगलों और अंग्रेजों के दमनकारी युग में खुद को बचाने के लिए हमने कायरता और दोगलेपन का लिबास ओढ़ लिया**। महात्मा गाँधी के दौर में और आजादी मिलने के तुरंत बाद लोगों में उत्साह और जोश के साथ आशा की एक किरण भी थी। लेकिन दुर्भाग्यवश ये आशावादी समय कुछ साल तक ही सीमित रहा। एक के बाद एक सरकारी तंत्र की विफलताओं ने लोगों को भारी बोझ तले दबा दिया। बुरी तरह से प्रदूषित पर्यावरण, गुंडाराज, अराजकता और न्याय के लिए जूझते लोग आज पौराणिक कथाओं और देवी-देवताओं की शरण में शांति की तलाश कर रहे हैं और अपनी श्रद्धा

के अनुरूप भगवान् का चयन कर रहे हैं। दिलचस्प बात तो ये है कि ये भारत जैसे देश में हो रहा है जहाँ चमत्कार को प्रणाम है और लोग हर दिन एक नये चमत्कार की उम्मीद रखते है। भगवान भारतीयों और भारत की रक्षा करे।

प्रकृतिमय संसार व प्राकृतिक विश्व

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा....., कसमे-वादे.....)

जन्मते प्रकृति (कर्म) मरते प्रकृति, सर्वत्र प्रकृति है संसार में।
सुख-दुःख व हानि-लाभ/(विषमता) में, प्रकृति करे (काम) संसार में।। (1)

प्रकृति से बनते जीव विभिन्न, वनस्पति व मृदा वायु जल।
अग्नि भी बनती है प्रकृति से, फल-फूल आदि प्रकृति से।। (2)

कीट-पतंग व पशु-पक्षी तक, प्रकृति के हैं रूप अनेक।
नारकी देव व मनुष्य तक, प्रकृति के हैं रूप अनेक।। (3)

नारी-नर व नपुंसक सभी, प्रकृति से जीव निर्मित।
काला-गोरा सुंदर व इतर, प्रकृति से (ये) जीव निर्मित।। (4)

प्राकृति है समस्त विश्व, आकाश काल व शुद्ध जीव।
सूर्य-चन्द्र व ग्रह-नक्षत्र,प्राकृतिक है अणु तक।। (5)

प्रकृति परे है शुद्ध जीव, सत्य चित्त व स्वयंभू।
ज्ञाता दृष्टा व आनंदमय, 'कनक' का यह परम लक्ष्य।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 22.10.2015, प्रातः 6.06

आगम ज्ञान व शुद्धात्मा भावना बिना मुक्ति नहीं

(शुद्धात्मा भावना बिना केवल बाह्य तप-त्याग पूजादि से मुक्ति नहीं)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

शुद्धात्मा भावना बिना व्रत तपादि, दानदया सेवा पूजा तीर्थ वंदना आदि।
न बनते मोक्ष हेतु न होता सम्यक्त्व, भले इससे मिले स्वर्ग मनुष्य सुख।। (स्थायी)

शुद्धात्मा भावना से ही मिलता सम्यक्त्व, होता है भेद-विज्ञान नशे मिथ्यात्व।
अनंतानुबंधी क्रोध मान मायादि नशे, ज्ञान व चारित्र भी होते सम्यक्।
व्रत नियम तप-त्यागादि होते सम्यक्, संवर व निर्जरा भी होते सम्यक्।
सातिशय बंध होता (है) पुण्य विशेष, सांसारिक सुख (व) मिले मोक्ष सुख।। (1)
शुद्धात्माभावना बिना न होता सम्यक्त्व, सम्यक्त्व बिना तप-त्याग न होते सम्यक्।
दान दया सेवा पूजा तीर्थ वंदना आदि, पापानुबंधी पुण्य बंधे न मिले मुक्ति।
घोर तप-त्याग उपसर्ग सहन आदि, मासोपवास सहित मुनिव्रत आदि।
सम्यक्त्व बिना न बनते मोक्ष (के) कारण, सम्यक्त्व बिना न होता भेद-विज्ञान।। (2)
सम्यक्त्व हेतु परमागम ज्ञान चाहिए, आध्यात्म अनुभवी श्रमण गुरु चाहिए।
पंचलब्धियों का सम्यक् संयोग चाहिए, राग द्वेष मोह का उपशम आदि चाहिए।
इसी से (होता है) आत्मा का सही श्रद्धान, जिससे होते सम्यक् व्रत (व) नियम।
स्वशुद्ध आत्मा का भी होता अनुभव ज्ञान, जिससे निश्चय से मैं हूँ परमात्मा समान।। (3)
शुद्धात्मा भावना से/(में) स्व का होता ज्ञान-ध्यान, मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध स्वभावी आनंद घन।
राग द्वेष मोह रहित (हूँ) सच्चिदानंद, तन-मन अक्ष रहित (हूँ) ज्ञानानंद।
इसी से आत्म विशुद्धि समता बढ़ती, राग द्वेष मोह की भी शक्ति घटती।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा की शक्ति नशती, ख्याति पूजा लाभ की इच्छा न होती।। (4)
इसी से ही आत्मा की प्रगति होती, संवर निर्जरा सहित मुक्ति मिलती।
जिससे मिलता आत्मिक अनंत सुख, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य आत्मिक सुख।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 06.12.2015, प्रातः 6.10

(मेरी आध्यात्मिक अनुभव संबंधी कविता)

मैं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या देखता हूँ?!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., क्या मिलिये ऐसे लोगों से.....)
आध्यात्मिक दृष्टि से जब मैं देखता हूँ संसार को।
सिद्ध स्वरूप/(चिन्मय रूप) देखता हूँ संसार के हर जीव को।। (ध्रु.)
इसी दृष्टि से कोई न छोटा-कोई न बड़ा होता है।

कोई न उच्च कोई न नीच, भेद-भाव कुछ न होता है।।
कोई न पशु-कोई न नारकी, कोई न देव होता है।
कोई न मनुष्य कोई न स्त्री, कोई न नपुंसक होता है।। (1)
कोई न धनी कोई न निर्धनी, कोई न भिखारी होता है।
कोई न शत्रु कोई न मित्र, अपना-पराया न कोई होता है।।
जो कोई शरीर-इन्द्रिय-मन को, अपना/(मैं) स्वरूप मानता है।
उसकी प्रज्ञा-श्रद्धा को मैं, अंध श्रद्धादि रूप/(अहंकार रूप) मानता हूँ।। (2)
सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री को, मेरी है ऐसा जो मानता है।
उसकी ऐसी परिणति को मैं, ममकार रूप/(मोह रागरूप) मानता हूँ।।
धर्म जाति राष्ट्र भाषादि के कारण, अन्य से जो वैरत्व करते।
ऐसे भाव-व्यवहार को मैं, राग-द्वेष-मोह रूप मानता हूँ।। (3)
समता शांति आत्मविशुद्धि बिना, जो स्वयं को धार्मिक मानता है।
उसके ऐसे भाव को मैं अज्ञान, मोहाछन्न रूप से मानता हूँ।।
जन्म-मरण सांसारिक सुख-दुःखादि को मैं विभावमय देखता हूँ।
यथा आकाश के बादल-रंगादि को मैं, भौतिकमय जानता हूँ।। (4)
सच्चिदानंद-सत्य-शिव-सुंदरमय, हर जीव को मैं मानता हूँ।
ऐसा स्वरूप हर जीव प्राप्त करे, ऐसी भावना मैं ('कनक') भाता हूँ।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 20.11.2015, प्रातः 7.00

मेरा शुद्ध स्वरूप ही मेरा सद्धर्म-स्वधर्म

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., भातुकली.....)

मेरा स्वधर्म तो मुझ में ही स्थित, अन्य में नहीं है अवस्थित।
अतः स्वधर्म (ही) मुझ में ही, स्वयं को पाना है यह सत्य।। (1)
'सद् द्रव्यलक्षणम्' से सिद्ध होता है, मेरा स्वरूप है सत स्वरूप।
'गुणपर्ययवत् द्रव्यम्' से सिद्ध है, मुझ में ही अरिहंत व सिद्ध।। (2)

'उत्पाद व्यय ध्रौव्य' स्वरूप द्रव्य है, अतः धर्म मुझ में भी तीनों रूप।
मुझमें ही मेरा धर्म उत्पन्न होता, मुझमें ही विलय व ध्रौव्य/(स्थित) होता।। (3)

मेरा रत्नत्रय मुझमें ही स्थित, अतएव मैं ही हूँ मोक्षमार्ग।
मुझमें ही रत्नत्रय पूर्ण होता, अतएव मैं ही हूँ मोक्षमय।। (4)

सत्य स्वरूप हूँ अतः (हूँ) सनातन, अनादि अनिधन स्वयंभू पूर्ण।
अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य।। (5)

यही मेरा रूप यही मेरा सर्वस्व, यही मेरा सद्धर्म व स्वधर्म।
इसी से भिन्न सभी राग द्वेष मोहादि, मुझसे परे सभी कर्मज भाव।। (6)

पर विभावों को त्यागकर मुझे ही, स्वभाव को पाना है मेरा स्वधर्म।
इसी हेतु ही व्यवहार धर्म विधेय, 'कनकनन्दी' हेतु स्वधर्म ही ध्येय।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 24.12.2015, रात्रि 2.17 से 2.53

संकीर्णता व भौतिकता परे आध्यात्मिकता

(चाल : चलो दिलदार चलो.....)

चलो आत्मकामी चलो! आध्यात्मिक भाव धरो ऽऽऽ
संकीर्ण सीमा छोड़ों! भौतिकता परे चलो ऽऽऽ (ध्रुव)

राग द्वेष मोह काम...पक्षपात स्वार्थ भाव
ईर्ष्या घृणा तृष्णा भाव...होते अनात्म भाव/(संकीर्ण भाव)

इसी से परे भाव...आत्मा का है स्वभाव
सत्य समता सुख...ज्ञान दर्शन/(वीर्य) भाव...चलो (1)

धन-धान्य मकान...सोना-चाँदी गहना...
यान-वाहन पैसा...भोगोपभोग सामान...

वस्त्र उपकरण यंत्र...आहार औषधि तन...
सभी है भौतिकमय...इसी से परे चेतन...चलो (2)

अनात्म भाव में जीना...भौतिक को निज मानना...
ये है अज्ञान मोह...संकीर्ण भौतिकमय...

इसी से परे चलो...आध्यात्मिक भाव पालो...
यही है तेरा रूप...'कनक' का शुद्ध रूप...चलो (3)

नन्दौड़, दिनांक 19.10.2015, रात्रि 9.21

यह कविता ''प्रवचनसार'' व ''हृदय की शक्ति'' (बैप्टिस्ट द पैप) से भी प्रभावित है।

''सभी खुश/(सुखी) रहे ऐसा भाव उत्तम परन्तु सभी को सुखी/(खुश) करना असंभव''

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

पवित्र उदारता की भावना धरो, वसुधैव कुटुम्ब का भी विचार करो।
मैत्री प्रमोद माध्यस्थ करुणा धरो, सभी जीव सुखी रहे विचार करो।। (1)

हर जीव के अनुसार नहीं विचार, दुर्ज्जनों के अनुसार नहीं विचार।
अज्ञानी-मोही (पापी) को खुश करने हेतु, आयोग्य भाव-व्यवहार पतन हेतु।। (2)

तीर्थंकर बुद्ध ईसा मसीह आदि, सभी को न सुखी कर पाये भी कभी।
उनके भी शत्रु होते हैं अनेक, सभी के भाव न होते एक व नेक।। (3)

सभी ग्राहक को वेश्या करती खुश, सती न करती सभी जन को खुश।
व्यापारी माल बेचे सभी ग्राहक को, आप्त वचन सही न लगे सभी को।। (4)

अभव्य न कभी बन पाते हैं भव्य, सुदृष्टि न बन पाते दूरान्दूर (भी) भव्य।
रेत से न निकलता कभी भी तेल, नहीं सुधरे रावण कंस हिटलर।। (5)

सुयोग्य शिष्य को उपदेश देना विधेय, अयोग्य अविनयी को न देना विधेय।
आगम अनुभव मनोविज्ञान से (मैं) जाना, आत्म सुधार को 'कनक' प्रमुख माना।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 20.10.2015, प्रातः 9.20

स्व-शिष्यों को ही आचार्य प्रायश्चित्त देते हैं व कठोर वचन बोलते हैं, अन्य जनों को नहीं!?

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

स्व-शिष्यों को ही प्रायश्चित्त देते, (तथाहि) बोलते सूरी कठोर वचन।
अन्य से ऐसा न व्यवहार करते, यह है आचार्यों का अलौकिक गुण।।

दुष्ट-पापी-अज्ञानी मोही जीवों के, सहन भी करते हैं कटु वचन।
ताड़न मारन प्रताड़न सहते, करते न प्रतिकार न (कहते) कटु वचन।।

मिथ्यादृष्टि को भी धर्मवृद्धिरस्तु म्लेच्छादि को भी धर्मलाभ कहते।
नमोऽस्तु कहने वाले श्रावकों को, सद्धर्मवृद्धिरस्तु कहते हैं।।

(सुदृष्टि) चांडालादि को पापक्षयोस्तु कहते, साधु आदि को प्रतिनमोऽस्तु।
केवल संघस्थ साधु-साध्वी को, प्रायश्चित्त देते कहते कठोर वचन।।

यह विधान है आगम/(प्रायश्चित्त) में वर्णित, मर्यादा व अनुशासन में गर्भित।
शिष्यों के लिए ही प्रायश्चित्त विधान, विधर्मी हेतु नहीं यह विधान।।

विधर्मी (जब) सधर्मी स्वयं बनना चाहे, (तब ही) यह विधान उन्हें होगा प्रयोग।
अन्यथा (यह) होगा बल प्रयोग सम, मर्यादा रहित अनुशासन विहीन।।

धर्म आत्मविश्वास से होता प्रारंभ, विवशतापूर्वक न होता है सद्धर्म।
सिस्साणुग्गहकुसल होते धम्माईरिय, 'कनकनन्दी' हेतु यह होता है मान्य।।

श्लोक- विकासयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रेविरिवारविन्दस्य कठोराच्च गुरुक्तयः।। (42) आत्मानुशासन

हिन्दी- कठोर सूर्य किरणों से, यथा विकसित होता कमल।
कठोर भी गुरु कथन से तथा विकसित भव्य कमल।।

श्लोक- लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभा पुरा।
दुर्लभाः कर्तुमद्यते वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।। (43) आत्मानुशासन

हिन्दी- उभयलोक हितकर वक्ता श्रोता सुलभ पूर्वे।

पालन दुर्लभ पूर्व भी, वक्ता-श्रोता दुर्लभ अब। ।

श्लोक- हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीर्दुःखायसे भृशम्।
विपर्यये तयोरेधि त्वं सुखायिण्यसे सुधीः।। (46) आत्मानुशासन

हिन्दी- हितत्यागकर अहित अपनाकर, दुर्बुद्धि से पाया दुःख अनेक।
विपरीत करो है इसी से, सुख पाओगे बनो हे! सुबुद्धि।।

नन्दौड़, दिनांक 21.10.2015, प्रातः 6.00

धर्म व अध्यात्म में समानता व अंतर

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

धर्म है वस्तु स्वभावमय जो, हर द्रव्य में स्थित होता है।
जीव-अजीव व मूर्तिक-अमूर्तिक, हर द्रव्य धर्ममय होता है।।

आध्यात्मिक है जीव का शुद्ध स्वरूप, जो चैतन्य स्वरूप होता है।
ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय व सच्चिदानंद स्वरूप होता है।

हर द्रव्य में स्थित गुणों को 'स्वभाव' 'शक्ति' या 'धर्म' कहते हैं।
'लक्षण' या 'विशेष' रूप में भी, धर्म का कथन भी करते हैं।। (1)

हर द्रव्य में होते सामान्य गुण, 'अस्तित्व' 'वस्तुत्व' व 'द्रव्यत्व'।
'प्रमेयत्व' 'अगुरुलघुत्व' 'प्रदेशत्व' सहित होते हर द्रव्य।

किन्तु जीवों में होते विशेष गुण, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय।
अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह समता शांति क्षमामय।। (2)

आत्मविश्वास अनुभवज्ञान, सदाचरण सहिष्णुता उदारमय।
भेद-विज्ञान युक्त विवेकज्ञान, ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग।

शुद्ध-बुद्ध व परमात्म अवस्था, होती है परम आध्यात्मिकमय।
इसे प्राप्त हेतु जो होती है प्रक्रिया, उसे भी कहते हैं धर्ममय।। (3)

यथा पूजा-पाठ जप आराधना, तीर्थयात्रा वंदना प्रार्थना स्तवन।
दान दया सेवा व परोपकार, वैयावृत्ति, सहयोग-उपवास-मौन।

किन्तु आध्यात्मिक बिना उक्त धर्मकाम से नहीं मिलती है परम मुक्ति।

भले इसी से मिले सांसारिक सुख, भोगोपभोग-ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि।। (4)

इसी से संसार में ही परिभ्रमण होता, चौरासी लाख योनि व चतुर्गति में।
जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक मिलते, परम सुख न मिले संसार में।

मोक्ष प्राप्ति हेतु (अतः) जीवों को आध्यात्मिक, चाहिए जीवों का शुद्ध स्वरूप।
अतएव 'कनकनन्दी' आध्यात्मिक, सेवन करे पाने को शुद्ध स्वरूप।। (5)

संदर्भ-

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्म भोग-णिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्त।। (275) समयसार

अभव्य जीव नित्य कर्मफल चेतना रूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञान चेतना मात्र वस्तु की श्रद्धा नहीं करता क्योंकि वह सदा (स्व-पर के) भेद-विज्ञान के अयोग्य है। इसलिये वह कर्मों से छूटने के निमित्त रूप, ज्ञानमात्र, भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नहीं करता, भोग के निमित्त रूप, शुभ कर्म मात्र, अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा करता है; इसलिये वह अभूतार्थ धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रूचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोग मात्र को प्राप्त होता है किन्तु कभी भी कर्मों से मुक्त नहीं होता। इसलिये उसे भूतार्थ धर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ) श्रद्धान भी नहीं है।

नन्दौड़, दिनांक 06.12.2015, रात्रि 8.00

संपूर्ण धर्म व अधर्म का स्वरूप

(संपूर्ण धर्म हेतु चाहिए नवकोटि से धर्म पालन न कि केवल शरीर व भौतिक बाह्य धार्मिक क्रियाएँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

केवल शरीर व भौतिक क्रिया से ही, नहीं होता है संपूर्ण धर्म।
नवकोटि से धर्म होता है, तथाहि नवकोटि से होता अधर्म।।

उत्तम भाव-व्यवहार करो नवकोटि से, तब पूर्ण होगा धार्मिक काम।
निकृष्ट भाव-व्यवहार त्यागो, नवकोटि से न होगा (पूर्ण) अधर्म काम।। (1)

सनम्र सत्यग्राही बनो भावना करो, सरल-सहज व पावन।
स्व-पर-विश्व हितकारी करो भावना, यथायोग्य करो नवकोटि से पालन।।

क्रोध मान माया लोभ कामादि के, त्याग से होता है पावन भाव।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा मोह निन्दा आदि, त्याग से होता है पावन भाव।। (2)

पावन भावना सहित सत्य, समता-शांति को करो स्वीकार।
हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह, का भी त्याग करो शक्ति अनुसार।।

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ का, भाव व व्यवहार भी विधेय।
मन वचन काय व कृत कारित, अनुमत से भाव-व्यवहार विधेय।। (3)

इसी से युक्त हो देव-शास्त्र-गुरु की, सेवा-पूजा आदि भी करणीय।
दान वैयावृत्ति तीर्थयात्रा व, स्वाध्याय-ध्यान भी करणीय।।

इन सब कार्यों से भी उपरोक्त, भाव-व्यवहार को वर्द्धनीय।
धार्मिक क्रियाएँ तो उत्तम भाव-व्यवहार के लिए ही करणीय।। (4)

उत्तम भाव-व्यवहार तो बीज सम, जिससे धर्म रूपी वृक्ष बनता है।
धार्मिक क्रियाएँ तो मृदा जलादि सम, जिससे धर्म वृक्ष पोषित होता है।।

साध्य-साधन रूपी निमित्त-उपादान से, ये सभी घटित होते हैं।
उत्तम भाव-व्यवहार साध्य है तो, धार्मिक क्रियाएँ साधन रूपी होती है।। (5)

परस्पर सहयोगी होना दोनों को विधेय, भाव विशुद्धि हेतु होना ही श्रेय।
विशुद्धभाव से ही मिलता है मोक्ष, 'कनकनन्दी' हेतु मोक्ष ही श्रेय।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, उत्तम क्षमादि होते धर्म (श्रेष्ठ) लक्षण।
इससे ही मिलता है परम मोक्ष, इससे विपरीत सभी अधर्म लक्षण।। (6)

उपरोक्त सभी भाव-व्यवहार व, धार्मिक क्रियाओं से विपरीत।
होते सभी भाव-व्यवहार, धर्म से विपरीत व पापबंध कृत।। (7)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 03.01.2016, रात्रि 8.29

संदर्भ-

केवल बाह्य धार्मिक क्रियाकाण्डों से भाव में पवित्रता-स्थिरता नहीं आती है, पाप आस्रव एवं बंध नहीं रुकता है, सातिशय पुण्य बंध नहीं होता है, कर्म की निर्जरा

नहीं होती है, किन्तु भगवत् स्मरण आदि पवित्रता-स्थिरता से करने से मन प्रसन्न होता है, तनाव-संक्लेश-भय-संदेह आदि दूर होते हैं, पापास्रव-बंध रुकता है, सातिशय पुण्य बंध होता है, कर्म की निर्जरा होती है, जिससे शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग दूर होते हैं, परंपरा से मोक्ष मिलता है। भाव की पवित्रता-एकाग्रता से आध्यात्मिक महापुरुषों के गुणानुवाद-गुण स्मरण से धीरे-धीरे वे आध्यात्मिक गुण भी भक्त के भाव में प्रगट होते जाते हैं जिससे भक्त धीरे-धीरे भगवान् बनता जाता है। जैसा कि सूर्य किरण लैंस के माध्यम से केन्द्रीभूत होकर स्थिर होने पर तापमान में वृद्धि होते-होते अग्नि उत्पन्न हो जाती है; वैसा ही आध्यात्मिक महापुरुषों के ध्यान, मनन, स्मरण, पूजन, पवित्रता-एकाग्रता से करने से स्वयं में निहित आध्यात्मिक गुण (ज्ञान, समता, सुख, शांति) धीरे-धीरे प्रगट होते जाते हैं और भव्य-भक्त भगवान् बनता जाता है।

एकेन्द्रियादि जीवों के प्रति कृत दोषों के परिशोधन

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः सञ्चरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिताः, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा।।5।।

O lord! if I have, by carelessly moving hither and thither, destroyed, cut as under brought in (incompatible) connection, or otherwise injured any organism possessed of one or more senses, may wrong action of mine by annuled.

भावार्थ-हे देव! यदि प्रमाद से इधर-उधर सञ्चरण करते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रियादि जीव नष्ट हुए हो, अलग किये गये हो, मिलाये गये हो, पीड़ित किये गये हो, तो वह दुष्कृत मिथ्या/व्यर्थ/दूर हो।

प्राप्त शिक्षाएँ-प्रत्येक जीव जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है, क्योंकि जीव का मूल स्वभाव शाश्वतिक एवं सुखमय है। इसलिए किसी भी जीव को किसी भी प्रकार के कष्ट नहीं देना चाहिए। जानबूझकर (संकल्प, इच्छापूर्वक, लक्ष्य) किसी भी जीव को कष्ट देना सदा-सर्वदा-सर्वथा अपराध/पाप/हानिकारक होने से अविधेय है, किन्तु प्रमादवशतः भी किसी भी जीव को कष्ट पहुँचने पर पश्चात्ताप करना चाहिए, प्रायश्चित्त लेना चाहिए और ऐसे कुकृत्य से निवृत्त होना चाहिए। यह ही यथार्थ से अहिंसा, सहअस्तित्व, पर्यावरण सुरक्षा, जीओ और जीने दो, उदार पुरुषाणां वसुधैव स्वकुटुम्बकम्, विश्वमैत्री, विश्व बंधुत्व, आत्मवत् सर्वभूतेषु, परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्, वैश्विक संविधान-कानून है।

चारित्र संबंधी दोषों के परिशोधन

विमुक्तिमार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो।। (6)

Moving away from the path of salvation, if I, over-powered by passions and senses, have, owing to perversity, omited to observe the rules of purity of conduct, may such errors of mine, O master! be set at naught.

भावार्थ-हे प्रभु! मोक्षमार्ग से विपरीत प्रवृत्ति करने वाला, दुर्बुद्धि वाला मेरे द्वारा कषाय एवं इन्द्रियों के वश होकर चारित्र की शुद्धि में जो कुछ लोप किया गया है, वह सब मेरा दुष्कृत व्यर्थ/नष्ट होवे।

प्राप्त शिक्षाएँ-मोक्षमार्ग (स्वतंत्रता, मुक्ति, परिनिर्वाण) कषाय से रहित, इन्द्रियासक्ति से परे पवित्र चारित्र वाला है। इसलिए जो मोक्षपथ के पथिक है उसे विषय-कषाय, दुष्चारित्र, दुर्बुद्धि से परे होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त केवल बाह्य धार्मिक क्रिया-काण्ड, वेश-भूषा, परंपरा, रीति-रिवाज, पर्व, त्यौहार, तीर्थयात्रा, पूजा-पाठ, जप-तप, भजन, कीर्तन, भाषण, कथा-वाचन आदि से मुक्ति मिलना संभव नहीं है। यदि निष्कषाय, इन्द्रिय संयम, सद्बुद्धि के लिए या इनसे युक्त होकर धार्मिक क्रिया-काण्ड किया जाता है तो वह सब मोक्षमार्ग के लिए साधक है अन्यथा बाधक/व्यर्थ/अनुपयोगी है।

दोष परिशोधन के उपाय

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनो वचः काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्।। (7)

I destroy sin, from which all ills in the consmos proceed, whether committed through mind, or word, or body, or passion, by self analysis, self censure, and repentance, just as a doctor completely removes all effects of poison by the force of incantation.

भावार्थ-यथा मांत्रिक वैद्य मंत्र के गुणों के द्वारा संपूर्ण विष को दूर कर देता है तथा मैं मन-वचन-काय तथा कषाय से निर्मित पाप जो कि संसारके दुःख के कारणभूत हैं उसे निंदा, गर्हा, आलोचना के द्वारा नष्ट करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-जिस प्रकार शरीर में विष प्रवेश करने पर पीड़ा से लेकर मृत्यु तक संभव है परन्तु मंत्र, औषधि आदि के द्वारा उस विष को दूर/नष्ट करके स्वास्थ्य

प्राप्त कर सकते है उसी प्रकार मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना तथा क्रोध-मान-माया-लोभ से उत्पन्न पाप (कर्म) जो संसार के विभिन्न दुःखों के कारण हैं उसे दूर/नष्ट करके सांसारिक दुःखों को भी नष्ट करके अक्षय, अनंत सुख प्राप्त कर सकते हैं। स्व-दोष को दूर करने के लिए निन्दा (आत्म साक्षी पूर्वक स्वयं-दोष विश्लेषण) गर्हा (गुरु-साक्षी पूर्वक स्व-दोष-विश्लेषण), आलोचना करना चाहिए। यह आध्यात्मिक शुद्धिकरण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक-न्यायिक प्रक्रिया से भी सरल-सहज-शुद्ध-गुणकारी-चिरस्थायी-सर्वदोष निवारक तथा शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अभौतिक रामबाण औषधि है।

विविध स्तरों के दोष

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः-प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।। (8)

O World-victor! I purify myself by performing expurgation for all foolish deviations from rectitude due to indifference whether it be Atikrama,Vyatikrama, Atichara and Anachara.

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मैंने कुबुद्धि से सुचारित्र रूपी क्रिया का प्रमाद के कारण जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-किसी भी अंतरंग एवं बहिरंग कारणों के वश से प्रमाद जनित भाव-व्यवहारों से ज्ञात-अज्ञात से भी कुछ न कुछ दोष उत्तम चारित्र में लगना संभव है। ऐसी परिस्थिति में उस दोष को दूर करना प्रत्येक सुखकामी, विकास को चाहने वाले महानुभावों का नैतिक-आध्यात्मिक कर्त्तव्य है क्योंकि जब तक जीव छद्मस्थ (असर्वज्ञ, अवीतरागी, घाति कर्म से युक्त) रहता है तब तक पूर्व के उपार्जित कर्म के उदय से दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिए आध्यात्मिक प्रगति, मानसिक शांति के लिए, शारीरिक व मानसिक रोग दूर करने के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा/सम्मान/शुद्धता आदि के लिए प्रतिक्रमण सहज-सरल आध्यात्मिक उपाय है।

विविध स्तरों के दोषों के कारण

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं-व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलङ्गनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं-वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम्।। (9)

Atikrama is the defiling of the pure condition of mind, and

Vyatikrama is transgression of pure mental action, Atichara, O Lord! is indulgence in sensual desires, and Anachara is defined as excessive attachment (to them).

भावार्थ-हे प्रभु ! इस लोक में (1) मानसिक शुद्धि की विधि में क्षति होने को अतिक्रम, (2) शीलव्रत (सदाचार) के उल्लंघन को व्यतिक्रम, (3) विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार, (4) विषयों में अत्यंत आसक्त होने को अनाचार कहते हैं।

प्राप्त शिक्षाएँ-आत्मिक शुद्धि के इच्छुक दोषों के विभिन्न स्तर को जानता है/जानना चाहिए। क्योंकि दोषों के स्तर/डिग्री/मात्रा के अनुसार ही उसको दूर करने के उपाय भी तदनुकूल होते हैं। ''जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे,'' ''यथा मति तथा गति'' के अनुसार दोष या गुण का अंकुर मन-भाव से ही होता है और विकास क्रम से वृद्धिगत होता है। यदि बीज का अभाव ही हो या अंकुर होने ही नहीं दिया जाए तो आगे का विकास क्रम भी संभव नहीं है। इसलिए दोष के विकास क्रम को नहीं चाहने वाले महानुभाव प्रथमतः मानसिक अशुद्धता को ही उत्पन्न नहीं करता है/उत्पन्न होने को ही रोक देता है।

इससे विपरीत पापी/दोषी/अन्यायी/अत्याचारी/दुराचारी/आतंकवादी मन में उत्पन्न अशुद्धता को नहीं रोकता है/रोकना नहीं चाहता है/या जान-बूझकर बढ़ाता है। मन में अशुद्धता का उत्पन्न होना ही (1) अतिक्रम है।

इस दोष के विकास क्रम में सदाचार का उल्लंघन करके (2) व्यतिक्रम के स्तर पर पहुँच जाता है। पुनः उस स्तर से बढ़ता हुआ विषयों (क्रोध-मान-माया-लोभ, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि) में प्रवृत्त करता है। इस स्तर को (3) अतिचार कहते हैं।

''अभ्यास से गुणवत्ता में वृद्धि होती है'' के नियमानुसार अतिचार में प्रवृत्त करता-करता दोषों की मात्रा को बढ़ाते हुए दोष के चरम स्तर में पहुँच जाता है जिस स्तर को (4) अनाचार कहते हैं। इस अवस्था में विषयों में अत्यंत आसक्ति होती है। इस विभिन्न स्तरों को समझने के लिए धूम्रपान, मद्यपान, नशीली वस्तुओं के सेवन करने वालों के विभिन्न स्तरों की प्रकृति-प्रवृत्ति उदाहरण के योग्य है।

आस्रव की विशेषता में कारण

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः। (6)

The differences in flow in different souls caused by the same

activity arise from differences in the following :

1. तीव्रभाव Intensity of desire or thought activity, 2. मंदभाव Mildness, 3. ज्ञातभाव Intentional character of the act, 4. अज्ञातभाव Unintentional character of the act, 5. अधिकरण Dependence, 6. वीर्य One's own position and power to do the act.

तीव्रभाव, मंदभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य विशेष के भेद से आस्रव की विशेषता होती है।

योग प्रत्येक संसारी जीव के होता है। योग होने पर भी संपूर्ण जीवों के आस्रव समान नहीं होता है। क्योंकि जीवों के परिणामों के अनंत भेद हैं। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

''णाणाजीव णाणाकम्म णाणाविह हवे लद्धि''

अर्थात् संसार में अनेक जीव (अनंत) है उनके कर्म (अनंत कर्म) है। इसलिए उनकी लब्धियाँ भी नाना (अनंत) प्रकार की हैं। इसलिए उनके योग, उपयोग विभिन्न प्रकार के होते हैं। उसके अनुसार कर्म और बंध भी अनेक प्रकार के होते हैं।

(1) तीव्र भाव-अति प्रवृद्ध क्रोध, मान, माया और लोभादि के कारण परिणामों की तीव्रता को तीव्र कहते हैं वा बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से कषायों की उदीरणा होने पर अत्यंत संक्लिष्ट भाव होते हैं, अत्यंत उग्र परिणाम होते हैं, उन परिणामों को तीव्र कहते है।

(2) मंद भाव-तीव्र से विपरीत परिणाम मंद होते हैं। बाह्य आभ्यन्तर कारणों से कषायों की अनुदीरणा के कारण से उत्पद्यमान अनुद्रिक परिणाम मंद होने से मंद कहलाते हैं। अर्थात् कषायों की उदीरणा में परिणाम तीव्र होते है और कषाय की अनुदीरणा में परिणाम मंद होते हैं।

(3) ज्ञात भाव-ज्ञात मात्र वा जानकर के प्रवृत्ति करना ज्ञात भाव है। मारने के परिणाम न होने पर भी हिंसा हो जाने पर 'मैंने मारा' यह जान लेना ज्ञात है अथवा 'यह प्राणी मारने योग्य है' ऐसा जानकर प्रवृत्ति करना ज्ञात भाव है।

(4) अज्ञात भाव-मद या प्रमाद से गमनादि क्रियाओं में बिना जाने प्रवृत्ति करना अज्ञात भाव है। जैसे-सुरापान करने वाले की इन्द्रियाँ विकल हो जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों को मोहित करने वाले परिणाम मद कहलाते हैं। उस मद से तथा कुशल

(आत्म हितकारक) क्रियाओं के प्रति अनादर भाव रूप प्रमाद के कारण गमनादि क्रियाओं में बिना जाने प्रवृत्ति करना अज्ञात भाव कहलाता है।

(5) अधिकरण भाव-जिसमें पदार्थ अधिकृत किये जाते हैं वह अधिकरण है। आत्मा के प्रयोजन को अर्थ कहते हैं। जहाँ-जहाँ जिसमें प्रयोजन सिद्ध किये जाते हैं, प्रस्तुत किये जाते हैं वह अधिकरण है, द्रव्य है। अर्थात् क्रिया का आधारभूत द्रव्य अधिकरण है।

(6) वीर्य भाव-द्रव्य का स्वसामर्थ्य वीर्य है। द्रव्य की शक्ति विशेष वा सामर्थ्य विशेष को वीर्य कहते हैं।

अधिकरण के भेद

अधिकरणं जीवाजीवाः। (7)

The dependence relates to the souls and the non-souls.

अधिकरण जीव और अजीव रूप है।

जीव और अजीव ये जो आस्रव के अधिकरण और आधार हैं। यद्यपि सम्पूर्ण आस्रव जीव के ही होता है तथापि आस्रव के निमित्त जीव और अजीव दोनों के होते हैं। क्योंकि हिंसा आदि के उपकरण रूप से जीव और अजीव ही अधिकरण होते हैं। ये दोनों अधिकरण दस प्रकार के हैं-विष, लवण, क्षार, कटुक, अम्ल, स्नेह, अग्नि और खोटे रूप से प्रयुक्त मन-वचन और काय।

जीवाधिकरण के भेद

आद्यंसंरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमत-
कषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः। (8)

The first जीवाधिकरण i.e. dependence on the souls in of 108 kinds due to differences in the following :

1. संरम्भ Determination to do a thing.
2. समारम्भ Preparation for it i.e. collecting materials for it.
3. आरम्भ Commencement of it.

These three can be done by the three yogas i.e. activity of mind, body and speech, thus there are 3 x 3 = 9 kinds. Each one of the 9 kinds can be done in three ways i.e. by doing oneself or having it done by others or by approval or acquiescence. Thus

we get 27 kinds. Each one of the 27 may be due to the 4 possions. That gives us 27 x 4 = 108 kinds.

पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से 3 प्रकार का योगों के भेद से तीन प्रकार का कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलने से 108 प्रकार का है।

इस सूत्र में जीव के निमित्त से होने वाले आस्रव के भेद का वर्णन किया गया है। उस आस्रव के भेद 108 प्रकार के हैं। 108 प्रकार के आस्रव के प्रायश्चित्त स्वरूप या उसको दूर करने के लिए माला में 108 मणियाँ होती हैं। संरम्भ आदि का वर्णन निम्न प्रकार है-

(1) संरम्भ-प्रयत्न विशेष को संरम्भ कहते हैं। प्रमादी पुरुष का प्राणघात आदि के लिए प्रयत्न करने का संकल्प संरम्भ है।

(2) समारम्भ-हिंसादि साधनों को एकत्र करना समारम्भ है। साध्य क्रिया के साधनों को इकट्ठा करना समारम्भ है।

(3) आरम्भ-तत्त्व का कथन करने से सर्व ही (ये तीनों शब्द) भाव साधन हैं। अर्थात् संरम्भण संरम्भ, समारम्भण समारम्भ और आरम्भण आरम्भ हैं।

(4 से 6) मन, वचन, काय योग-'कायवाङ्मनस्कर्मयोगः' इस सूत्र में योग शब्द का व्याख्यान कर चुके हैं।

(7) कृत-कृत वचन स्वातंत्र्य प्रतिपत्ति के लिए है। स्वतंत्र रूप से जो आत्मा के द्वारा किया जाता है, वह कृत है।

(8) कारित-पर प्रयोग की अपेक्षा कारित का अभिधान है। जो दूसरे के द्वारा कराया जाता है, वह कारित कहलाता है।

(9) अनुमोदना-अनुमत शब्द से प्रयोजक के मानसिक परिणामों की स्वीकृति दर्शायी गई है। अर्थात् करने वाले के मानस परिणामों की स्वीकृति अनुमत है। जैसे कोई मौनी व्यक्ति किये जाने वाले कार्य का यदि निषेध नहीं करता है तो वह उसका अनुमोदक माना जाता है, उसी प्रकार कराने वाला प्रयोक्ता होने से और उन परिणामों का समर्थक होने से अनुमोदक है।

(10 से 13) क्रोध, मान, माया और लोभ विशेष-क्रोधादि कषायों का

लक्षण कह चुके हैं कि जो आत्मा को कसती हैं, दुःख देती है, वे कषाय हैं।

अर्थ का अर्थान्तर से जाना विशेष है। विशेष किया जाता है वा विशेष करना, वह विशेष है अथवा विशिष्ट को विशेष कहते हैं।

विशेष का सम्बन्ध सबके साथ लगाना चाहिये। वह विशेष शब्द प्रत्येक के साथ सम्बन्धित है। जैसे-संरम्भविशेष, समारम्भविशेष, आरम्भविशेष, कृतविशेष, कारितविशेष, अनुमोदितविशेष, योगविशेष और कषायविशेष।

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, योग, कृत, कारित, अनुमोदित तथा कषायविशेष के द्वारा आस्रव का भेद होता है। तात्पर्य यह है कि क्रोधादि चार और कृत आदि तीन के भेद से कायादि योगों के संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ से विशिष्ट (सम्बन्ध) करने पर प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस भेद होते हैं।

संरम्भो द्वादशधा क्रोधादिकृतादिकायसंयोगात्।

आरम्भोसमारम्भौ तथैव भेदास्तु षट्त्रिंशत्।

कहा भी है-क्रोधादि और कृतादि के द्वारा कायसंरम्भ बारह प्रकार का है। इसी प्रकार समारम्भ और आरम्भ के साथ कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ का काययोग के साथ संयोग करने से बारह-बारह भेद होते हैं। काय के साथ आस्रव के ये छत्तीस भेद हैं, वैसे ही वचनयोग और मनोयोग के साथ छत्तीस-छत्तीस भेद करने चाहिए। इन सबका जोड़ करने पर जीवाधिकरण आस्रव के कुल एक सौ आठ भेद होते हैं।

सूत्र में 'च' शब्द क्रोधादि कषायों के विशेषों का संग्रह करने के लिए है। अर्थात् 'च' शब्द से कषायों के भेद और उपभेदों का भी ग्रहण हो जाता है। अतः अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय के सोलह भेदों से गुणा करने पर जीवाधिकरण आस्रव के चार सौ बत्तीस भेद भी होते हैं।

प्रश्न-संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ आदि के आस्रवत्व कैसे हैं?

उत्तर-क्रोधादि से आविष्ट पुरुष के द्वारा कृत संरम्भ आदि क्रियाएँ कषायों से अनुरंजित होने से, नीले वस्त्र के समान अधिकरण भाव को प्राप्त होती हैं। जैसे नीले रंग में डाला गया वस्त्र नीले रंग से अनुरंजित होने से नीला हो जाता है, उसी प्रकार संरम्भ आदि क्रियाएँ अनंतानुबंधी आदि कषायों से अनुरंजित होती हैं, अतः इन संरम्भादि में भी जीवाधिकरणत्व सिद्ध होता है।

भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म

(अशुभ-शुभ-शुद्ध भाव से होता है पाप-पुण्य व मोक्ष)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

आत्म विशुद्धि के लिए ही पालनीय है सदा धर्म।
दान पूजा तीर्थयात्रा तप-त्याग ध्यान व अध्ययन।। (ध्रुव)

आत्म विशुद्धि रहित जो करते है बाह्य धर्म।
ख्याति पूजा व लाभ हेतु राग द्वेष सहित हो धर्म।।

सातिशय पुण्य का न होता बंध नहीं होता है पाप नाश।
पापानुबंधी होता पुण्यबंध संसार न होता नाश।। (1)

मिथ्यात्व सहित जो दिखावा हेतु करते है धर्म।
सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि हेतु निदान सहित पालते धर्म।।

उन्हें न यथार्थ से होता पुण्य, पुण्य बंधता है अतिकम।
पाप की निर्जरा भी नहीं होती, नहीं मिलता है मोक्षधाम।। (2)

जप करता हुआ सेठ, पानी-पानी का किया ध्यान।
मरकर स्व-बावड़ी में ही, मेंढ़क योनि में लिया जन्म।।

जाति स्मरण के बाद महावीर के दर्शन हेतु चल पड़ा।
कमल-दल मुख में लेकर, शुभ-भाव में चल पड़ा।। (3)

मार्ग में ही श्रेणिक के, हाथी के पैर से कुचल मरा।
अंतर्मुहूर्त में देव बनकर, समवशरण में पहुँच गया।।

आकाशगामिनी विद्या सिद्धि हेतु, सेठ ने णमोकार मंत्र जपा।
शंका के कारण से विद्या को, वह सिद्ध न कर पाया।। (4)

शंका रहित हो चोर ने, आणं-ताणं का जप किया।
शुभ भाव व एकाग्रता से, विद्या को शीघ्र सिद्ध किया।।

पुण्य पाप (व) बंध-मोक्ष सभी, होते हैं परिणामों से।
शुभ भावों से पुण्य बंध, पाप (होता) अशुभ परिणामों से।। (5)

शुद्ध भाव से होता है मोक्ष, भाव ही मुख्य सभी में।
शुभ व शुद्ध भाव, करणीय (है) दान पूजादि में।।

शुभ व शुद्ध भाव हेतु, धार्मिक क्रियाएँ हैं निमित्त (करण, साधन)।
बाह्य निमित्त के माध्यम से, पावन करणीय चित्त/(परिणाम)।। (6)

साधन बिना न कभी, होती है साध्य की सिद्धि।
साधन ही जब बाधक बनते, तो दूर हो जाती सिद्धि।।

लक्ष्य हो मोक्ष साधन तो, समुचित पावन हो चित्त।
साध्य मिलेगा अवश्य, 'कनक' वर्णन किया आगमोक्त।। (7)

स्व-स्व भूमिका में व्यवहार, धर्म भी सदा पालनीय।
भाव विशुद्धि हेतु व्यवहार धर्म सदा भी पालनीय।।

राग द्वेष मोह के क्षीण से होता है भाव विशुद्ध।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा निन्दादि, त्याग से होता भाव विशुद्ध।। (8)

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तु कामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।। (संस्कृत पूजा)

अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं आगमानुकूल जल, चन्दनादि द्रव्यों की शुद्धता को पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्ब दर्शन आदि अनेक आवलंबनों का आश्रय लेकर भूतार्थ रूप पूज्य अरहंतादि का पूजन करता हूँ।

अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यूननमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवल बोध वह्नौ,
पुण्य समग्र महमेकमना जुहोमि।। (संस्कृत पूजा)

हे अर्हन्! हे पुराण पुरुषोत्तम! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्यों का आलंबन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवलज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूँ।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 27.12.2015, रात्रि 8.37

(यह कविता स्वाध्याय के समय में श्रीमती मधुबाला (अध्यापिका) के द्वारा की गई जिज्ञासा के समाधान में बनी।)

स्व-शुद्धात्म श्रद्धान से होता है धर्म का शुभारंभ

(नैतिकता से परे भी है आध्यात्मिकता)

(नैतिकता बिना धर्म नहीं व केवल नैतिकता ही धर्म नहीं)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : शत-शत वंदन....., आत्मशक्ति.....)

भोगभूमि के तिर्यंच मनुष्य भी, नहीं भोगते हैं सप्त-व्यसन।
क्रोध-मान-माया-लोभ भी होता (है) मंद, बाह्य पंच पाप भी न करते सेवन।। (1)

भले वे होते हैं सम्यग्दृष्टि अथवा, मिथ्यादृष्टि या अभव्य।
सभी ही मानव पशु-पक्षी भी, पालन करते हैं उक्त कर्त्तव्य।। (2)

मिथ्यादृष्टि जीव जो होते यथायोग्य, उपरोक्त गुणों से सहित भी होते।
देव दर्शन भी करते वे देव, तथापि वे न होते सच्चे धार्मिक।। (3)

इसी से यह सिद्ध होता (है) उक्त सभी, कर्त्तव्य होते हैं नैतिक गुण।
व्यक्ति से लेकर विश्व मानवों को, पालनीय उपरोक्त कर्त्तव्य गण।। (4)

तन-मन-इन्द्रिय स्वास्थ्य के लिए, तथाहि सामाजिक सुव्यवस्था हेतु।
हर मानवों को प्राकृतिक रूप से, सेवनीय उक्त गुण सभ्यता हेतु।। (5)

यथा मछली तैरती (है) पानी में, अंतरिक्ष में उडते (हैं) विहंगम।
तथाहि सभ्य नैतिक मानवों को, पालनीय उक्त कर्त्तव्य गण।। (6)

निरतिशय होता पुण्य बंध किन्तु, न होता सातिशय पुण्य बंध।
सांसारिक तुच्छ भोग मिले किन्तु, नहीं मिलता है मोक्ष सुख।। (7)

इसी से आगे धर्म होता प्रारंभ, जो होता है आध्यात्ममय।
आत्मविश्वास व आत्मज्ञान सहित, आत्म परिणाम विशुद्धमय।। (8)

आत्मविश्वास में होता है श्रद्धान, मैं हूँ सच्चिदानंद अमूर्तमय।
तन-मन-अक्ष राग द्वेषादि रहित, मैं शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय।। (9)

तन-मनादि मेरे नहीं शुद्ध रूप, ये सभी तो विकारी कर्मज रूप।
इसी से परे होने के लिए होता है, लक्ष्य-आचरण भी होता तदनुरूप।। (10)

ऐसा श्रद्धान सहित जब पालन करता, उपरोक्त सभी नैतिक कर्त्तव्य।

तब ही बनते उक्त सभी कर्त्तव्य, धार्मिकमय आध्यात्मिक कर्त्तव्य।। (11)

उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विशुद्धि होने से, संसार शरीर से होता विरक्त।
ध्यान-अध्ययन व आत्म विशुद्धि से, अंत में पाता है कर्मों से मुक्त।। (12)

आगम में इसे कहते गुणस्थान आरोहण, चतुर्थ गुणस्थान से धर्म प्रारंभ।
स्व-शुद्धआत्मा की श्रद्धा व प्रज्ञा से, चतुर्थ गुणस्थान का होता प्रारंभ।। (13)

इससे अनेक शिक्षाएँ मिलती, जो सेवन करते सप्त व्यसन आदि।
वे सामान्य भद्र नैतिक भी न होते, कहाँ से होंगे वे धार्मिक आदि।। (14)

आत्म विशुद्धि बिन उक्त नैतिक गुणों से भी, कोई न होता है सच्चा धार्मिक।
धार्मिक होने हेतु आत्म विशुद्धि युक्त, सेवनीय उक्त नैतिक कर्त्तव्य।। (15)

नैतिक से भी श्रेष्ठ है आध्यात्मिक धर्म, जो नैतिक आत्म विशुद्धि संयुक्त।
नैतिक विहिन न होता है धर्म, नैतिकता न होती संपूर्ण धर्म।। (16)

नैतिक गुण बिन कोई न होता सभ्य/(सही) मानव, आत्म विशुद्धि बिना न होता धार्मिक।
दोनों से युक्त हो सभी मानव इसी हेतु, 'कनक' ने बनाया (यह) (पावन) शोध काव्य।। (17)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 29.12.2015, रात्रि 8.13

नवकोटि से होता है धर्म व अधर्म भी

(उत्तम भाव-काम आदि करो-कराओ-अनुमोदना करो)

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)

नैतिक-आध्यात्मिक व शुभ भावों का, करणीय ही सदा संवर्धन।
मन वचन-काय व कृत कारित से, संवर्धन हेतु हो अनुमोदन।।

मन से भी सोचो व वचन से भी कहो, काय से भी करो नैतिक आदि काम।
करो कराओ व अनुमोदना भी करो, जिससे हो उसमें परिवर्धन।। (1)

उत्तम (ही) सोचो उत्तम (ही) चर्चा करो, करो हे! काय से भी उत्तम काम।
स्वयं भी करो अन्य से भी कराओ, उत्तम करने वालों को अनुमोदना करो।।

इसी से होता उत्तम भावादि में संवर्द्धन, जिससे सातिशय पुण्य भी वर्द्धन।
अन्य का भी होता है उत्साहवर्द्धन, सहयोग सद्भाव का भी होता वर्द्धन।। (2)

दान भी करो मन में (भी) विचार करो, दान का सुफल का वर्णन करो।
प्रेरित भी करो अनुमोदना भी करो, ऐसा ही हर शुभकाम आदि में करो।।

श्रीमती वज्रजंघ ने यथा आहार दिया, पशु (व) मनुष्यों ने आहार दान देखा।
आहार दान अनुमोदना के कारण, स्वर्ग से लेकर मोक्षसुख भी मिला।। (3)

उत्तम पात्र को आहार दान के कारण, पंचाश्चर्य करते स्वर्ग के देवगण।
पात्र व दाता के गुणगान करते, बाजा बजाते (व) पुष्पवृष्टि भी करते।।

नवकोटि से पावन प्रसन्न बन, प्रोत्साहित हो अनुमोदना (भी) करो।
गौरवशाली बनो गौरवान्वित बनो, सातिशय पुण्य का संपादन करो।। (4)

पाप काम सांसारिक काम आदि को, करते जो नवकोटि से समर्थन।
उन्हें भी होता पाप बंध उससे, अतः पाप का न समर्थन हो मन से।।

शुभ सकारात्मक व आध्यात्मिक में, दान दया सेवा परोपकार आदि में।
नवकोटि में हो सहयोगी सदा ही, ऐसा ही करते 'कनकनन्दी' सदा ही।। (5)

संदर्भ-

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगण-कथा, दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे,
संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः।। (स. भक्ति)

अद्याभवत्-सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य-त्रिलोक-तिलक! प्रतिभासते में,
संसारवारिधि-रयं चुलुक-प्रमाणः।। (ईर्या भक्ति)

रूपं ते निरूपाधि-सुन्दर-मिदं, पश्यन् सहस्त्रेक्षणः,
प्रेक्षा-कौतुक-कारिकोऽत्र भगवन् नौपैत्यवस्थान्तरम्।
वाणी गद्गद्यन् वपुः पुलकयन्, नेत्र-द्वयं श्रावयन्,
मूर्द्धानं नमयन् करौ मुकुलयन्श्चेतोऽपि निर्वापयन्।। (ई.भ.)

ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 02.01.2016, रात्रि 10.22

स्व-पात्रता से मिलती उपलब्धियाँ

(स्व-कमियों के दूर से संभावनाएँ पूर्ण करूँ!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)

आत्मा रे!ऽऽ तू काहे विकल्प/(संक्लेश) करेऽऽऽ
तेरे अंदरऽऽ अनंत शक्ति/(संभावना)ऽऽ बीज रूप में भरे!ऽऽऽ आत्मा रे!...(ध्रुव)...

अंकुर यथा..बनता है वृक्षऽऽऽ तुष को पार करऽऽऽ
तथाहि तू स्व-कमियों को पार करऽऽऽ हो स्वयं संपूर्णऽऽऽ
कमियों को दूर करोऽऽऽ/(पूर्णता को प्राप्त करोऽऽ)...आत्मा रे!...(1)...

चुंबक यथा स्व-शक्ति सेऽऽऽ लोहा को आकर्षित करेऽऽऽ
अधिक शक्ति से अधिक करेऽऽऽ ऐसा ही तू भी करोऽऽऽ
स्व-शक्ति सम्वर्द्धन करऽऽऽ/(दुर्बलता दूर करोऽऽ)...आत्मा रे!...(2)...

दीपक यथा प्रकाशित होकरऽऽऽ तम को दूर करेऽऽऽ
अन्य दीपकों को भी प्रज्ज्वलित करेऽऽऽ तथाहि तू भी करोऽऽऽ
स्व-प्रकाशी बने रे!/(हे)ऽऽऽ/(स्व-पर प्रकाश करोऽऽ)...आत्मा रे!...(3)...

तेरी संभावनाएँ पूर्ण तब होगीऽऽऽ जब तू योग्य बनोगेऽऽऽ
तेरी योग्यता से संभावनाएँऽऽऽ प्रगट भी तत्काल होंगेऽऽऽ
सर्वज्ञ घातिनाश समऽऽऽ/(कर्मक्षय से सिद्ध समऽऽ)...आत्मा रे!...(4)...

सत्य-समता-शांति तत्काल पाओगेऽऽऽ तद्योग्य जब तू होंगेऽऽऽ
आदर सत्कार पूजा योग्य तू बनोऽऽऽ तेरे लिए सहज ये होंगेऽऽऽ
पात्र तू स्वयं ही बनोऽऽऽ/(संकल्प-विकल्प/(संक्लेश त्यजेऽऽ))...आत्मा रे!...(5)...

तुझे कोई भी कुछ नहीं देंगेऽऽऽ स्व-योग्यता से ही मिलेंगेऽऽऽ
चक्रवर्ती पद भीख से न मिलेऽऽऽ स्व-पुण्य/(योग्यता) से सहज मिलेऽऽऽ
स्वयं को योग्य बनाओऽऽऽ/(अयोग्यता दूर करोऽऽ)...आत्मा रे!...(6)...

तीर्थंकर पद महान् उपलब्धिऽऽऽ मिले स्व-भाग्य/(पुण्य)/(पुरुषार्थ) सेऽऽऽ
महान् उपलब्धियों को पाना तेरा (भी)ऽऽऽ स्वभावगत अधिकारऽऽऽ

कनक स्वभाव वर रेऽऽऽ/(शुद्ध-बुद्ध आनंद भरपूरऽऽ)...

...आत्मा रे! तू काहे विकल्प करेऽऽऽ...(1)...

ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 31.12.2015, मध्याह्न 1.13 (ईसाई नवीन वर्ष)

पात्र को ही प्राप्त होता है

खुशी, तरक्की, सफलता, प्रेम, सम्मान... कुछ भी पाने के लिए पात्र बनना पड़ता है। अपनी पात्रता बढ़ाते रहें, खुद को बेहतर बनाते रहें।

-जिम रॉन

एक दिन अर्ल शोऑफ ने कहा था, 'जिम, अगर तुम दौलतमंद और खुश बनना चाहते हो, तो यह सबक अच्छी तरह सीख लो। तुम अपनी नौकरी में जितनी मेहनत करते हो, खुद पर उससे ज्यादा मेहनत करना सीखो।'

तभी से मैं व्यक्तिगत विकास पर मेहनत कर रहा हूँ और मुझे मानना होगा कि यह सबसे चुनौतीपूर्ण काम है। यह काम जिंदगीभर चलता है।

देखिए, आप जो बनते हैं, वह आपको मिलने वाली चीजों में बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है। नौकरी में महत्वपूर्ण सवाल यह नहीं है, 'मुझे क्या मिल रहा है?' इसके बजाय आपको यह पूछना चाहिए, 'मैं क्या बन रहा हूँ?' पाना और बनना जुड़वाँ भाइयों की तरह है, आप जो बनते हैं, वह सीधे-सीधे उस पर असर डालता है, जो आपको मिलता है। इसे इस तरह से सोचे-आप आज जो हैं, उसका ज्यादातर हिस्सा आपने खुद आकर्षित किया है और वह व्यक्ति बनकर किया है, जो आप आज हैं।

तो यहाँ पर जीवन का एक महान् सूत्र बताया जा रहा है-'आपके पास जितना है, उससे ज्यादा पाने के लिए आपको अपने वर्तमान स्वरूप से ज्यादा बनना होगा।' यहीं पर आपको अपना सबसे ज्यादा ध्यान केंद्रित करना चाहिए। वरना आपको परिवर्तन न करने के सूत्र से जूझना पड़ सकता है, जो है-जब तक आप अपने वर्तमान स्वरूप को नहीं बदलते हैं, तब तक आपको हमेशा वही मिलता रहेगा, जो अब तक मिला है।

व्यक्ति कहता है, 'तो फिर मेरी जिंदगी कैसे बदलेगी?' और जवाब है, 'आपकी जिंदगी तभी बदलेगी, जब आप बदलेंगे।'

याद रखें-जब आप खुद को बदलकर बेहतर बना लेते हैं, तो आप सभी चीजों को बदलकर बेहतर बना सकते हैं। चाहे मैं बिजनेस एक्जीक्यूटिव्ज के सामने बोलूँ या हाईस्कूल के बच्चों के सामने, मेरा संदेश यही रहता है 'अपनी परिस्थितियों को बेहतर बनाने का एकमात्र तरीका यह है कि आप बेहतर बन जाये।' बेहतर कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसकी आप कामना करते हैं। यह तो वह है, जो आप बनते हैं।

दौलत और खुशी की सात रणनीतियाँ से।

मुझे चाहिए लोकोत्तर ज्ञान-भाव-व्यवहार

(लोक प्रसिद्ध ज्ञान-भाव व्यवहार से परे मुझे चाहिए परम सत्य व आत्म तत्त्व)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

कषाय (व) लेश्या से आवेशित है, सामान्य जनों के भाव-व्यवहार।
परम सत्य आध्यात्मिक तथ्य से, नहीं होता उसका कोइ सरोकार।। (1)

क्रोध मान माया लोभ से प्रेरित आहार, भय मैथुन परिग्रह से संचालित।
जन्म जरा मृत्यु रोग शोक पीड़ित, होते भाव-व्यवहार जो मोह मोहित।। (2)

यथा तीव्र निद्रा से पीड़ित जीव, घोर नींद में करते हैं शयन।
तथाहि कषाय आदि में आवेशित, जीव करते हैं भाव व काम।। (3)

क्षुधा से पीड़ित आहार करते, उसके लिए करते बहु विध काम।
भय निवारण हेतु अस्त्र-शस्त्र चाहिए, युद्ध व हत्या आदि काम।। (4)

काम से पीड़ित मैथुन करते, उसी हेतु करते हैं विभिन्न काम।
विवाह या बलात्कार वेश्यागमन, कुटुम्ब पालन व धनार्जन।। (5)

ऐसी प्रवृत्ति तो कीट-पतंग में भी, होती नहीं यह उच्च प्रवृत्ति।
उच्च आध्यात्मिक प्रवृत्ति हेतु, त्यजनीय है नीच प्रवृत्ति।। (6)

इनके भाव-व्यवहार कथन से, नहीं होता है आत्म उत्थान।
ऐसी प्रवृत्तिओं से तो होता है आत्म पतन।। (7)

यह सब काम कर्मफल चेतना या, कर्म चेतना से होता है।

ज्ञान चेतना इससे परे होती, जिसमें होती आत्म विशुद्धि।। (8)

आत्म विशुद्धि बिन सभी के ज्ञान, आध्यात्मिक विकास हेतु हेय हैं।
आत्म विकास हेतु संपूर्ण ज्ञान, मेरे लिए बहुत (ही) उपादेय है।। (9)

भले सभी से मैं शिक्षा लेता हूँ, सुगुणी व दुर्गुणी सभी से।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा पक्षपात आदि, नहीं करूँ मैं कभी भी किसी से।। (10)

तथापि मुझे लौकिक जनों से भी, परे चाहिए परम सत्य।
भौतिक वैज्ञानिक व दार्शनिक परे, मुझे चाहिए स्व-आत्म तत्त्व।। (11)

इसी हेतु ही तीन ज्ञानधारी, तीर्थंकर भी बनते है श्रमण।
'कनकनन्दी' भी आत्मोपलब्धि, हेतु बना है मुमुक्षु श्रमण।। (12)

नन्दौड़, दिनांक 12.12.2015, रात्रि 9.10, 9.45 व 1.03

परिग्रह : महापाप क्यों?

(परिग्रह में सभी पाप गर्भित)

(धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से)

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : अच्छा सिला दिया.....)

तीर्थंकर ने कहा विश्व को, परिग्रह है महान् पाप।
जिस पाप में गर्भित होते हैं, अन्यान्य समस्त पाप।। (1)

इस सिद्धांत को अभी के वैज्ञानिक, कर रहे हैं सत्य-सिद्ध।
प्रदूषण से लेकर ग्लोबल वार्मिंग तक, होते परिग्रह से सिद्ध।। (2)

अंतरंग व बहिरंग रूप से, परिग्रह होते है जिन कथित।
चौदह अंतरंग-बहिरंग दस, संपूर्ण होते परिग्रह चौबीस।। (3)

तृष्णादि होते (है) अंतरंग परिग्रह, जिससे होता है बहिरंग।
चेतन-अचेतन-मिश्र रूप में, बहिरंग होते है परिग्रह।। (4)

सत्ता-संपत्ति आदि बहिरंग परिग्रह, हेतु मानव करते है विविध पाप।
लोभ-मद-मोह अंतरंग परिग्रह, शोषण आदि अनेक पाप।। (5)

खान खोदते व प्रकृति नाशते, पशु-पक्षी मछलियों को मारते।
फैक्ट्री चलाते गाड़ी चलाते, भोग-उपभोग की सामग्री बनाते।। (6)

इसी से प्रकृति का विनाश करते, पर्यावरण प्रदूषण भी करते।
ग्लोबल वार्मिंग इससे बढ़ता, जिससे वातावरण असंतुलित होता।। (7)

अतिवृष्टि अनावृष्टि होती, अकाल भूखमरी अधिक बढ़ती।
ग्लेशियर पिघलते बाढ़ भी आती, समुद्र का जल-स्तर भी बढ़ता।। (8)

भूकंप आता सुनामी बनता, जन-धन का भी विनाश होता।
ओजोन परत में छेद भी होता, अनेक रोगों का प्रकोप बढ़ता।। (9)

पाप भी होता संताप बढ़ता, जीते जी ही नारकी बनते।
मरण उपरान्त नारकी बनते, तीर्थंकर अतः इसे पाप बताते।। (10)

अतएव मानव संतोषी बनो, परिग्रह तृष्णा कभी न करो।
संयमी बनो सदाचारी बनो, 'कनक' चाहे धार्मिक बनो।। (11)

नन्दौड़, दिनांक 04.12.2015, प्रातः 7.00

(यह कविता विदेशी वैज्ञानिक साहित्य व वैज्ञानिक चैलनों से भी प्रभावित है।)

आधुनिक आदर्श सज्जन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : बड़ा नटखट है रे! कृष्ण-कन्हैया.....)

धन्य हे! सज्जन (तू) आदर्श वालाऽऽऽ कलिकाल में भी नैतिक वालाऽऽऽ होऽऽऽ
अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार मुक्तऽऽऽ सादा जीवन उच्च विचार युक्तऽऽऽ होऽऽऽ...(स्थायी)

फैशन व्यसन आडम्बर मुक्तऽऽऽ सरल जीवन उच्च लक्ष्य युक्तऽऽऽ
दान दया सेवा परोपकार युक्तऽऽऽ ईर्ष्या तृष्णा घृणा अहंकार रिक्तऽऽऽ
धन्य हे! सज्जन...(1)...

अंधानुकरण नहीं आधुनिकता काऽऽऽ अंधानुकरण न मिथ्या परंपरा काऽऽऽ
कट्टर संकीर्णता ढोंग पाखण्ड काऽऽऽ खान पान वेशभूषा व भाषा काऽऽऽ
धन्य हे! सज्जन...(2)...

वैज्ञानिक शोध व आध्यात्मिक युक्तऽऽऽ प्रगतिशील विचार वैश्विक (दृष्टि) युक्तऽऽऽ

पर्यावरण सुरक्षा अहिंसा अपरिग्रहऽऽऽ विश्व नागरिक भाव विश्व शांति सहऽऽऽ
धन्य हे! सज्जन...(3)...

संस्कार सदाचार संस्कृति युक्तऽऽऽ मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ युक्तऽऽऽ
समता शांति आत्म विशुद्धि युक्तऽऽऽ 'कनक' मान्य सज्जन ऐसा (जो) ज्ञान युक्तऽऽऽ
धन्य हे! सज्जन...(4)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 25.12.2015, प्रातः 7.05, 'क्रिसमस-डे'

पर दुःख से दुःखी महान् जन तो पर दुःख से संतोषी होते दुर्जन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

पर दुःख कातर होते महान् जन...पर दुःख संतोषी होते दुष्ट दुर्जन...
तीर्थंकर बुद्ध आदि होते महान्...रावण कंस आदि सम होते दुर्जन...

पशुओं की पीड़ा से पीड़ित होकर...नेमिनाथ बन गये मुनीश्वर...
घायल हंस से भी दुःखी होकर...सिद्धार्थ गौतम हुए करुणावर...(1)...

उदार पुरुष हेतु होता विश्व कुटुम्ब...सभी के सुख हेतु वे करते भाव...
इससे विपरीत होते दुष्ट दुर्जन...अन्य को दुःख देने का करते भाव...

जो भावना भाता है तीव्र भाव से...सभी जीव सुखी हो वात्सल्य भाव से...
षोडष कारण भावना को भाता भाव से...तीर्थंकर बने यह वर्णन शास्त्रों में...(2)...

युगल नाग को मंत्र सुनाया पार्श्व ने...कुत्ता को मंत्र सुनाया जीवन्धर ने...
दिव्य ध्वनि में विश्व हित होता कथन...विश्व शांति व मोक्ष का होता वर्णन...

सभी के हित हेतु जो भावना भाता...हर जीव को स्व सम आत्मा मानता...
वह अन्य को न कष्ट देगा भाव से...मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ चित्त से...(3)...

पीत पद्म शुक्ल लेश्याधारी जो होते...सुदृष्टि-कुदृष्टि जीव भी जो होते...
वे सभी पर दुःख में होते कातर...कृष्ण नील कापोत वाले होते हैं क्रूर...

ईसा मसीह नाइटेंगल मदर टेरेसा...नेताजी सुभाष गाँधी विनोबा मण्डेला...
पर दुःख दूर हेतु भावना भी भाये...रावण कंस हिटलर पर को सताये...(4)...

अपाय विचय विपाक विचय धर्मध्यान...परोपकार दया दान सेवा करुणा दान...
पर दुःख दूर हेतु होते ये काम...'कनकनन्दी' की भावना है विश्व कल्याण...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 26.12.2015, रात्रि 7.50

स्वानुभव से ही शुद्धात्मा का यथार्थ कथन संभव

(शुद्धात्मा का यथार्थ कथन स्वानुभव बिना अन्य उपायों से सम्यक् नहीं/प्रामाणिक नहीं!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

सर्वज्ञ कथित...आगम लिखित...स्व-शुद्ध आत्मा का होता अनुभव ज्ञान...
अनुभव ज्ञान ही...आत्म प्रत्यक्ष होता...वह ज्ञान होता है...भावश्रुत ज्ञान...(ध्रुव)...

अनुभव बिना केवल आगम से...नहीं होता है भावश्रुत ज्ञान...
भावश्रुत बिना आगम ज्ञान भी...होता है निश्चय से द्रव्य श्रुतज्ञान...

द्रव्य श्रुतज्ञान होता है पौद्गलिक...शब्द अक्षरमय भौतिक ज्ञान...
अथवा केवल होता है मतिज्ञान...केवल मतिज्ञान से न होता आत्मज्ञान...(1)...

मिश्री का अनुभव न होता मिश्री शब्द से...पढ़ो-सुनो या गुणगान करो...
आत्म-अनुभव न होता 'आत्मा' शब्द से...पढ़ो-सुनो या गुणगान करो...

मिश्री चखने से होता है मीठा ज्ञान...आत्मज्ञान होता है अनुभव से...
अनुभव बिना आत्मा का वर्णन...सही न होता है शब्द ज्ञान से...(2)...

तोता के समान या टेप के समान...आत्मा का वर्णन होता यांत्रिक सम...
ऐसा वर्णन न होता पूर्णतः सत्य...न अनुभवगम्य-आत्म प्रत्यक्ष...

गणधर से लेकर आचार्य तक भी...आगम व अनुभव से करते कथन...
स्व-अनुभव से कथन करने पर ही...प्रामाणिक सह होता है कथन...(3)...

स्वानुभव रहित जो कथन होता...शुद्धात्म स्वरूप का न आत्म प्रमाण...
आत्म प्रमाण बिना शुद्धात्मा कथन...नहीं है यथार्थ से प्रत्यक्ष प्रमाण...

आत्मानुभव बिना आत्मा का ज्ञान...नहीं होता है इन्द्रिय ज्ञान से...
इन्द्रियाँ केवल स्थूल जड़ जानती...अमूर्त आत्मा को नहीं जानती...(4)

अतएव शुद्धात्मा के कथन समय में...आत्मानुभव भी होता है प्रमुख...
अतः स्व-अनुभव का भी कथन...करते हैं आत्मानुभवी श्रमण...
यह कथन नहीं है अभिमानपूर्ण...यह तो 'सोऽहं' 'अहं' पूर्ण स्वाभिमान...
शुद्धात्मा कथन या ध्यान कथन में...ऐसा कथन ही है प्रामाणिक कथन...(5)...
अन्यथा तो शुद्धात्मा कथन सभी...होंगे व्यापार या राजनीति सम...
लौकिक व्यवहार या सामाजिक सम...इतिहास पुराण या कानून सम...
अज्ञानी मोही व रागी द्वेषी कामीजन...नहीं जानते हैं आत्मानुभव ज्ञान...
अहंकार-ममकार में लिप्त जन...नहीं जानते 'सोऽहं' व 'अहं' ज्ञान...(6)...
आत्मानुभव न होता है भौतिक वस्तु...न बाहर से प्राप्त होने की वस्तु...
आत्मानुभव होता है स्वयं का गुण...स्वयं में स्वयं द्वारा प्राप्त ये गुण...
आत्मानुभव होता है अमूर्तिक ज्ञान...सच्चिदानंदमय स्वयं/(मैं) का ज्ञान...
रत्नत्रय व समता से युक्त ज्ञान...'कनकनन्दी' का स्व-शुद्धात्मा ज्ञान...(7)...
आत्मानुभव ही है सम्यक् ज्ञान...समता-शांति का यह निधान...
इसी से बढ़ता है आत्मानुशासन...इन्द्रिय-कषायों का होता नियंत्रण...
संसार शरीर/(भोग) से होता वैराग्य...ख्याति पूजा लाभ से विरक्त भाव...
ध्यान-अध्ययन-मनन-चिंतन में/(से)...होता है आध्यात्मिक ज्ञान अपूर्व...(8)...

नन्दौड़, दिनांक 06.11.2015, रात्रि 9.40

संदर्भ-

सत्थं णाणं ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा बेंति।। (390) समयसार
सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा बेंति।। (391)

रे! शास्त्र है नहिं ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु शास्त्र अन्य प्रभु कहे।।
रे! शब्द है नहिं ज्ञान, क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु शब्द अन्य प्रभु कहे।।

गाथा- **तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं न घेत्तव्वं।। (5) समयसार

छाया- **तमेकत्व विभक्तं दर्शयेहमात्मनः स्वविभवेन।**
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलेयं छलं न गृहीतव्यम्।।

हिन्दी पद्य- **दर्शाऊँ एक विभक्त को, आत्मातने निज विभव से।**
दर्शाऊँ तो करना प्रमाण, न छल गहो स्खलना बने।।

अन्वयार्थ-(तं) उस (एकत्वविभक्तं) एकत्व विभक्त आत्मा को (अहं) मैं (आत्मनः) आत्मा के (स्वविभवेन) निज वैभव से (दर्शये) दिखाता हूँ; (यदि) यदि मैं (दर्शयेयं) दिखाऊँ तो (प्रमाणं) प्रमाण (स्वीकार) करना, (स्खलेयं) और यदि कहीं चूक जाऊँ तो (छलं) छल (न) नहीं (गृहीतव्यं) ग्रहण करना।

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति, समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां, विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये।। (3) समाधितंत्र

परमात्मा को नमस्कार करके अनन्तर मैं पूज्यपाद आचार्य कर्ममल रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को शास्त्र के द्वारा, अनुमान व हेतु के द्वारा एकाग्र मन के द्वारा अच्छी तरह अनुभव करके कैवल्य पद-विषयक अथवा निर्मल अतीन्द्रिय सुख की इच्छा रखने वालों के लिए अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।। (1) समयसार
प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप।
सब ज्ञाता लखिके नमौं, समयसार सब भूप।।
जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।। (9)
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवलि तम्हा।। (10) समयसार

जो जीव निश्चय से श्रुतज्ञान के द्वारा इस अनुभवगोचर केवल एक शुद्ध आत्मा को सम्मुख होकर जानता है, उसे लोक को प्रगट जानने वाले ऋषीश्वर श्रुतकेवली कहते है; जो जीव सर्व श्रुतज्ञान को जानता है, उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं, क्योंकि ज्ञान सब आत्मा ही है, इसलिये (वह जीव) श्रुतकेवली है।

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं,
क्वचिदपि च न विद्भो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव।। (9) अमृतकलश

आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि इन समस्त भेदों को गौण करने वाला जो शुद्धनय का विषयभूत चैतन्य-चमत्कार मात्र तेजः पुञ्ज आत्मा है, उसका अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती, प्रमाण अस्त हो जाता है और निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते। इससे अधिक क्या कहें? द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात्।। (13) अमृतकलश

इस प्रकार जो पूर्व कथित शुद्धनय स्वरूप आत्मा की अनुभूति है, वही यथार्थ में ज्ञान की अनुभूति है, यह जानकर तथा आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके ''सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है'', इस प्रकार देखना चाहिये।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेस संतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।। (15) समयसार

जो पुरुष आत्मा को अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य, अविशेष (तथा उपलक्षण से नियत व असंयुक्त) देखता है वह सर्व जिनशासन को देखता है-जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत तथा अभ्यन्तर ज्ञानरूप भावश्रुत वाला है।

स्वात्मा (मैं) के परिज्ञान से तत्काल व आगामी कालीन लाभ

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)
जब होता परिज्ञान श्रद्धा प्रज्ञा से, आगम अनुभव व विविध नयों से/(गुरुपदेश से)।

निश्चय से मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनंद, कर्मबंध से बना हूँ संसारी जीव।। (1)

शक्ति रूप से अभी भी हूँ सच्चिदानंद, स्वयंभू सनातन व अनादि-अनिधन।
मौलिक स्वतंत्र हूँ मैं स्वयं में पूर्ण, अनंत गुणयुक्त हूँ मैं चैतन्यपूर्ण/(अमूर्तमय)।। (2)

इसी से परिज्ञान हो जाता अनात्मभाव, तन-मन-इन्द्रियादि भी न मेरा स्वभाव।
राग-द्वेष-मोहादि न मम स्वरूप, ये सब कर्मजनित है विभाव/(अशुद्ध) रूप।। (3)

तथाहि सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि आदि, शत्रु-मित्र भाई-बंधु कुटुम्ब आदि।
सर्व सचित्त-अचित्त मिश्र परिग्रह, नहीं है ये सभी मेरा शुद्ध स्वभाव।। (4)

इसी से भाव में होता महान् परिवर्तन, आत्म उपलब्धि का होता लक्ष्य महान्।
सांसारिक (क्षुद्र) उपलब्धि का न होता लक्ष्य, राग-द्वेष-मोहादि से होता विरक्त /(विमुख)।। (5)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि में न होता मोह, होती है श्रद्धा व प्रज्ञा विवेक सह।
भोगाकांक्षा व निदान से होता विरक्त, मैत्री-प्रमोद कारूण्य व माध्यस्थ चित्त।। (6)

प्रशम अनुकम्पा व आस्तिक्य संवेग, उदार सहिष्णु अनेकांत स्वभाव।
संवेदनशीलता न होती आध्यात्म निष्ठा, भौतिक उपलब्धि से न माने प्रतिष्ठा।। (7)

सकारात्मक विचार अति महान् होता, शुद्ध-बुद्ध परमात्मा होने का होता।
सांसारिक हानि-लाभ से परे हो जाता, दीन-हीन-अहंकार से परे हो जाता।। (8)

पर से अप्रभावित आत्मविश्वासी होता, समता-शांत व सहिष्णु भी होता।
संक्लेश-द्वंद्व से भी रहित होता, आत्म संतोषमय आनंद होता।। (9)

सातिशय पुण्य का भी आस्रव होता, अशुभ भाव का भी निरोध होता।
श्रमण बनकर सर्व कर्म क्षय करता, अनंत अक्षय सुख को प्राप्त करता।। (10)

अतएव आध्यात्मिक ही परम श्रेय, सर्व सुख प्राप्ति के श्रेष्ठतम उपाय।
आत्मा/(स्वयं) की उपलब्धि ही है परिनिर्वाण, इसी हेतु 'कनकनन्दी' बना श्रमण।। (11)

नन्दौड़, दिनांक 04.10.2015, रात्रि 1.10

संदर्भ-

गुरुपदेशादभ्यासात्संवित्तैः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।। (33) इष्टो.

जो गुरु के उपदेश से अभ्यास करते हुए यह आत्मा, उत्कृष्ट एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है और इसी तरह मन तथा वाणी के अगोचर अथवा वचनों से भी नहीं कहे जाने वाले स्वाधीन आनंद को प्राप्त कर लेता है।

तदेवानुभवंश्चायमेकाग्रं परमृच्छति।

तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम्।। (170) तत्त्वानुशा.

उस आत्मा का अनुभव करता हुआ यह आत्मा, उत्कृष्ट एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है और इसी तरह मन तथा वाणी के अगोचर अथवा वचनों से भी न कहे जा सकने वाले स्वाधीन आनंद को प्राप्त कर लेता है।

स्वस्मिन् सदाभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।

स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः।। (34) इष्टो.

स्वयं स्वस्मिन् सदाभिलाषित्वात् अभीष्टज्ञापकत्वतः हितप्रयोक्तृत्वात् आत्मनः आत्मा एवं गुरु अस्ति।

जो सत् का कल्याण का वांछक होता है, चाहे हुए हित के उपायों को जतलाता है तथा हित का प्रवर्तक होता है, वह गुरु कहलाता है। जब आत्मा स्वयं ही अपने में सत् की कल्याण की यानि मोक्ष-सुख की अभिलाषा करता है, अपने द्वारा चाहे हुए मोक्ष-सुख के उपायों को जतलाने वाला है तथा मोक्ष-सुख के उपायों में अपने आपको प्रवर्तन कराने वाला है, इसलिये अपना (आत्मा का) गुरु आप (आत्मा) ही है।

यथा यथा समायांति संवित्तो तत्त्वमुत्तमम्।

तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।। (37) इष्टो.

ज्यों-ज्यों संवित्ति (स्वानुभव) में उत्तम तत्त्वरूप का अनुभवन होता है, त्यों-त्यों उस योगी को आसानी से प्राप्त होने वाले भी विषय अच्छे नहीं लगते।

चिदानन्द रूपं सिद्धोऽहं-शुद्धोऽहं-बुद्धोऽहं

-आचार्यश्री कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे! तू स्वयं को सही समझोऽऽऽ

तन मन इन्द्रिय न तेरा रूपऽऽऽ तू तो सिद्ध स्वरूप/(चिन्मय रूप)ऽऽऽ...(ध्रुवपद)...

तन मन इन्द्रिय तो जड़ रूपऽऽऽ कर्म पुद्गल जनितऽऽऽ
राग द्वेष मोह न तेरा रूपऽऽऽ ये तो विभाव रूपऽऽऽ
तू तो सच्चिदानंद रूपऽऽऽ जिया रे!...(1)...

नोकर्म से बने तन व इन्द्रियऽऽऽ मनोवर्गणा से बने मनऽऽऽ
राग द्वेष मोह तो भाव कर्म हैऽऽऽ मोहनीय कर्म है नामऽऽऽ
कर्मातीत तेरा रूपऽऽऽ जिया रे!...(2)...

तद्भव मरण से तन-मन-अक्षऽऽऽ हो जाते हैं तुझसे पृथक्ऽ
मोक्ष होने पर राग द्वेष मोहऽऽऽ हो जाते हैं तुझसे पृथक्ऽ
तू तो शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ जिया रे!...(3)...

कर्मजनित विभाव भाव सेऽऽऽ मिलते हैं अनंत दुःखऽऽऽ
जन्म जरा मरण रोग शोकऽऽऽ संयोग-वियोग-दुःखऽऽऽ
तू अजर अमर शाश्वतऽऽऽ जिया रे!...(4)...

स्व को जानो स्व को मानोऽऽऽ स्वयं का ही सतत ध्यानऽऽऽ
समता शांति आत्म विशुद्धि सेऽऽऽ स्वयं का ही करो वरणऽऽऽ
स्वयं में ही करो रमणऽऽऽ/(यह ही है परिनिर्वाण)ऽऽऽ जिया रे!...(5)...

यह ही है तेरा परम स्वरूपऽऽऽ यह ही है तेरा स्वधर्म/(सुधर्म)ऽऽऽ
यह ही है तेरा परम कर्म/(शरण)ऽऽऽ यह ही है तेरा स्वतीर्थऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-परमार्थऽऽऽ
सिद्धोऽहं...शुद्धोऽहं...बुद्धोऽहंऽऽऽ जिया रे!...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 29.12.2015, प्रातः 6.35 से 7.08
(यह कविता श्रमणी सुवत्सलमती के कारण बनी।)

करूणा! तेरी अमृतधारा

(अहिंसा (करूणा) का विश्व रूप)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)
करूणा! तेरी अमृतधारा...झर-झर बहती जाये।

विश्वभर के हर जीव मात्र...तुझे से प्लावित हो जाये।। (स्थायी)

तुम तो उदार पावनमय, वैश्विक तेरा प्रभाव।
सूक्ष्म जीव से सिद्ध जीव तक, तेरा होता है निवास।
अपना-पराया भेद-भाव रिक्त, तू बरसाये आशीष।।...करूणा...(1)

हर जीव में मैत्री भाव रूप में, गुणी जीव में प्रमोद।
दुःखी जीव प्रति कृपा भाव में, विपरीत में माध्यस्थ।
दया दान सेवा परोपकार रूप में, तेरा (ही) सर्वत्र निवास।।...करूणा...(2)

वात्सल्यमय भी तेरा ही रूप, समता शांति उदारता।
क्षमा मार्दव आर्जव शौचमय, सत्य संयम अपरिग्रह।
तप त्याग व ब्रह्मचर्यमय, आकिंचन्य तेरा ही रूप।।...करूणा...(3)

आत्मविशुद्धि ही तेरा स्वरूप, पर्यावरण रक्षा (भी) तेरा रूप।
विश्व शांति व विश्व मैत्री भी, तेरा ही है विभिन्न रूप।
चोरी मिलावट शोषण रहित, भ्रष्टाचार आतंक (वाद) रिक्त।।...करूणा...(4)

ईर्ष्या द्वेष घृणा रहित रूप, निन्दा अपमान रिक्त रूप।
संकीर्ण पंथ-मत परे स्वरूप, जाति भाषा राष्ट्र उपरत।
आकाश सम सीमा रहित, सर्व व्यापक विश्व रूप।।...करूणा...(5)

तेरे लिए ही है धर्म आचरण, पूजा आराधना व प्रार्थना।
ध्यान अध्ययन व आत्म विश्लेषण, तेरे लिए ही तप साधना।
तेरा ही है परम उत्कृष्ट रूप, शुद्ध बुद्धमय परम आत्मा।।...करूणा...(6)

तेरे बिना न कोई धर्म होता, कानून राजनीति संविधान।
व्यक्ति-समाज व्यवस्था से लेकर, वैश्विक व्यवस्था भी तक।
तू ही जीव का मूल स्वभाव, 'कनक' का शुद्धात्म भाव।।...करूणा...(7)

नन्दौड़, दिनांक 24.11.2015, प्रातः 6.37

(यह कविता प्रवचनसार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय आदि से प्रभावित।)

जीव का परम विकासवाद

(जीव की जिनेन्द्र व शुद्ध सिद्ध बनने की यात्रा)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., भातुकली.....)

वृक्ष बनता है यथाहि बीज, जिनेन्द्र बनते है तथाहि जीव।
भव्य ही बनता है भगवान्, यही परम विकास का पैमाना।। (ध्रुव)

अनादि काल से प्रत्येक जीव, निगोदिया रूप से करता निवास।
एक श्वास में लेता जन्म-मरण, अठारह-अठारह छत्तीस प्रमाण।
अनंतकाल रहते निगोदिया में, अनंत जन्म-मरण करते है वे।
छह महीने व आठ समय में, एक सौ आठ जीव त्रस में जन्मते।। (1)

द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय होते।
पशु-पक्षी-मानव-नारकी होते, देवगति में भी वे जन्म लेते।
पाँचों लब्धियों को पाकर कोई, सम्यग्दृष्टि होते दुर्लभ सो ही।
परम सत्य (व) स्वशुद्धात्मा का, करता विश्वास वह ज्ञान सहित।। (2)

श्रद्धा-प्रज्ञा से स्वयं को मानता, मैं हूँ सच्चिदानंद स्वरूप।
अनादि अनिधन स्वयं पूर्ण हूँ, अनंत ज्ञान दर्शन सुखवीर्य हूँ।
श्रद्धा व प्रज्ञा से युक्त होकर, आत्मोपलब्धि हेतु त्यागे संसार।
राग द्वेष मोह काम त्यागकर, ध्यान अध्ययन में होता तत्पर।। (3)

समता-शांति आत्म विशुद्धि से, आध्यात्मिक विकास करते निरंतर।
घाति नाश से बनते सर्वज्ञ, दिव्य ध्वनि से (देते) विश्व को उपदेश।
परम सत्य का वे देते उपदेश, परम आत्म विकास का संदेश।
पाप ताप संताप दूर हेतु, विश्व शांति विश्व कल्याण हेतु।। (4)

अंत में अघाति कर्म नाशकर, बनते हैं शुद्ध-बुद्ध परमेश्वर।
जन्म-जरा-मरण रहित होकर, बनते जिनेन्द्र सिद्ध परमेश्वर।
यही जीव का परम विकासवाद, चौरासी लक्ष्य योनि परे विकास।
परम विकास से रिक्त अनंत जीव, चौरासी लक्ष्य योनि में (करते) निवास।। (5)

उनका होता है उत्थान-पतन, चतुर्गति में होता जन्म-मरण।

मनुष्य मरकर जन्मे चारों गति में, पशु मरकर भी जन्मे चारों गति में।
छह महीने आठ समय के मध्य, एक सौ आठ (108) जीव जाते मोक्ष में।
परम विकास ही जीवों का हो लक्ष्य/(स्वभाव), 'कनकनन्दी' का भी परम लक्ष्य/
(शुद्ध स्वभाव)।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 28.12.2015, रात्रि 6.12
(यह कविता श्रमणी सुवत्सलमती के कारण बनी।)

(1) इसके विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत ब्रह्माण्ड आकाश-काल-जीव अनंत (2) तत्त्वानुचिन्तन (3) विश्व शांति आदि का अध्ययन करे।

अज्ञानी-मोही के विपरीत भाव व व्यवहार

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : भातुकली....., छोटी-छोटी गैया.....)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध से, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा व अहंकार से।
जीव न जानते सत्य-तथ्य, हिताहित विवेक से होते रिक्त।।

सत्य को असत्य माने जाने जीव, हित को अहित माने वे जीव।
मद्यपी से भी होते अधिक मोहित, अंधे से भी अधिक विवेक रहित।।

सत्ता-संपत्ति को अपना मानते, भोगोपभोगों में होते आसक्त।
फैशन-व्यसनों में होते मस्त, पर अहित में लगाते चित्त।।

गुण व गुणी की न प्रशंसा करते, अन्य की प्रशंसा से घृणा करते।
अन्य की निन्दा से प्रसन्न वे होते, अन्य के दुःख से खुश वे होते।।

अन्य की प्रगति से जलते रहते, अन्य को छोटा कर बड़ा बनते।
अन्य की निन्दा से महान् बनते, अन्य के नाश से स्व-विकास मानते।।

विघ्नसंतोषी व छिद्रान्वेषी होते, परसुखकातर व कृतघ्नी होते।
स्व-दोष व कमी को नहीं जानते/(मानते), स्व-दोष कमी को सही मानते/(जानते)।।

संकीर्ण कट्टर जो धार्मिक होते, धन-जन-मान से संयुक्त होते।
ख्याति-पूजा-लाभ में (जो) आसक्त होते, बुद्धिजीवी में उक्त कुगुण (अधिक) होते।।

सरल-सहज भोला-भाला जो होते, श्रद्धा-प्रज्ञा से जो संयुक्त होते।

स्व-परहितकारी (जो) गुणज्ञ होते, उक्त कुगुण से वे बचते रहते।।

स्व-पर सुख हेतु सुगुण ग्राह्य, स्व-पर दुःख हेतु कुगुण त्याज्य।
सुगुणों से ही मिलता है मोक्ष, 'कनक' अतएव सुगुणों में आसक्त।।

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, प्रातः 8.18

रागी द्वेषी मोही के भाव व्यवहार तथा इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)
रागी द्वेषी मोही कामी क्रोधी, नहीं जानते हैं सत्यासत्य।
ईर्ष्या तृष्णा व घृणा सहित, करते भाव व्यवहार अयुक्त।।
यथाहि मद्यपी नशा सहित, नहीं जानता है हित-अहित।
भाव व्यवहार करता अहितकर, तथाहि रागी द्वेषी के भाव व्यवहार।। (1)

मद्य से भी अधिक होता नशा, राग द्वेष मोह काम क्रोध में।
कुछ समय (तक) मद्य का नशा रहता, राग द्वेषादि का तो भव-भव में।।
रागी द्वेषी मोही न स्वयं को जाने, तथाहि न जानता हैं पर स्वरूप।
स्वयं को जानता है शरीरमय, राग द्वेष मोहादि को स्व-स्वभाव।। (2)

शरीर संबंधिओं को माने स्व-कुटुम्ब, सत्ता-संपत्ति को माने स्व-वैभव।
जन्म जरा मरण को (माने) स्व-अवस्था, सांसारिक सुख-दुःख को आत्म दशा।।
इन्द्रिय विषयों को ही मानता सत्य, इन्द्रिय सुख को ही मानता सुख।
तन-मन-इन्द्रियमय (ही) माने स्वयं को, सच्चिदानंदमय न माने स्वयं को।। (3)

उक्त विषयों में ही रूचि रखता, उसके लिए ही वह ज्ञान करता।
उसका संवर्द्धन संरक्षण करता, अहंकार व प्रशंसा भी करता।।
आध्यात्मिक जन इससे भिन्न होता, स्वयं को सच्चिदानंद मानता।
स्वरूप का श्रद्धान व ज्ञान करता, स्व-स्वरूप प्राप्ति हेतु यत्न करता।। (4)

स्व-स्वरूप चिंतन व ध्यान करता, स्व-स्वरूप की चर्चा प्रशंसा करता।
तप त्याग द्वारा मोक्ष प्राप्त करता 'कनक' को स्वरूप ही श्रेय लगता।।

दोनों के भाव व्यवहार भिन्न होते, परस्पर विरोधी भाव-व्यवहार होते।
मोही आध्यात्मिक जन को दोषी मानता, आध्यात्मिक जन साम्य भाव रखता।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 21.12.2015, रात्रि 12.27

रागी-द्वेषी-मोही-अज्ञानी से विपरीत भाव व काम

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : देहाची तिजोरी.....(मराठी), दुनिया हँसे....., छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

विचित्र है कर्म विचित्र है भाव...विचित्र है कथन विचित्र है काम...
हिताहित ज्ञान रिक्त अविवेकी काम...सत्यासत्य ज्ञान बिन भ्रमपूर्ण ज्ञान...(स्थायी)...
आत्म-परमात्म ज्ञान बिन धार्मिक काम...शरीर को 'मैं' माने आत्मा का न भान...
अष्टमदमय भाव (व) काम में आसक्त...स्वाभिमान/
(स्व-गौरव) सोऽहंभाव को माने अनुचित...
अहंकार-ममकार में होते लवलीन...आत्म-हित को मानते नीच काम...
बाह्य ढोंग-पाखण्ड तो मानते धर्म...समता शांति पवित्रता का न करते काम...(1)...
धन व मान हेतु करते नीच काम...शोषण-मिलावट व नौकरी काम...
सेवा दान परोपकार के काम को...नीच व नौकर का माने तुच्छ काम...
फैशन-व्यसन आदि को माने गौरव काम...आडम्बर-दिखावा को महान् का काम...
सादा जीवन उच्च विचार को हीन काम...आत्मविश्वास अनुभव को दंभ काम...(2)...
भेड़-भेड़िया चाल में चलते चलाते...देखादेखी अयोग्य काम भी करते...
स्वयं को पतित बनाते अन्य को सताते...स्वयं को महान् व महान् को नीच मानते...
धन मान प्रसिद्धि को ही महान् मानते...इसी हेतु पढ़ाई व नौकरी करते...
शोषण-मिलावट-भ्रष्टाचार आदि करते...आध्यात्मिक विकास को नहीं जानते...(3)...
चमड़ी दमड़ी पढ़ाई को श्रेष्ठ मानते...महान् लक्ष्य व भाव को नहीं जानते...
अज्ञानी मोही की होती अनंत कहानी...आध्यात्मिक की होती इससे विपरीत कहानी...
परस्पर विरोधी होते ज्ञानी-अज्ञानी...अज्ञानी की दृष्टि से ज्ञानी-अज्ञानी...
अंधकार-प्रकाश सम होते विरोधी...'कनक' को मान्य आध्यात्मिक सद्बुद्धि...(4)...

ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 30.12.2015, मध्याह्न 3.57

केवल धन से ही नहीं होता है : धर्म!

(धन के त्याग से होता है धर्म!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., क्या मिलिये.....)

धन ही नहीं है धर्म स्वरूप, धर्म तो आत्म स्वभाव।
धन से ही यदि होता है धर्म तो, तीर्थंकर क्यों त्यागते वैभव।। (टेक)

न्याय नीति से ही धन कमाकर, अपरिग्रह अणुव्रत भी पाले श्रावक।
तृष्णा कम हेतु उस धन को, दान दया पूजा आदि में करे उपयोग।।

किसी भी उपाय से धन कमाना, नहीं होता है निष्पाप काम।
असि मसि कृषि वाणिज्य सेवा, अथवा विविध कला आदि व्यापार।। (1)

धनार्जन में जो होता है पाप, तथाहि समस्त गृहस्थ कामों में/(से)।
निश्चय से उपार्जित होते हैं पाप, पाप निरसन हेतु दान दयादि।।

केवल धन के विनिमय से ही, नहीं होता है धार्मिक काम।
यथा होटल-मेडिकल स्टोर्स के, व्यापार-विनिमय से न होता दान।। (2)

धन हेतु यथा पढ़ाई न है ज्ञानदान, होटल के भोजन से न होता अन्नदान।
औषधालय के व्यापार-विनिमय से, न होती वैयावृत्ति-औषधदान।।

तथाहि यदि धन-विनिमय हेतु या, नाम व सांसारिक स्वार्थ हेतु।
धन का यदि होता है निवेश, धर्म न होता, न होता पुण्य सातिशय।। (3)

धन से ही यदि होता है धर्म, पञ्च परमेष्ठी न होते धार्मिक।
निर्धन मानव व पशु-पक्षी भी, नहीं हो पाते हैं कभी धार्मिक।।

धनी ही धन से धर्म को खरीदता, तथाहि धनदाता होता धार्मिक।
तब तो धर्म होती बाजारू वस्तु, भौतिक विनिमय की वस्तु आर्थिक।। (4)

धर्म में अनुचित प्रयोग धन का, होता उत्पन्न विकार है धर्म में।
धन का उपार्जन व धर्म में प्रयोग, सम्यक् रूप से होना ही विधेय।। (5)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 02.01.2016, मध्याह्न 1.25

(एक बच्चा ने कहा कि मैं शांतिधारा नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि मेरे पास रुपये नहीं है। कारण कि इसके लिए बोली होती है-इससे भावित होकर यह कविता बनी।)

जीव का शुद्ध स्वरूप या परम विकास

(चाल : तुम दिल की धड़कन में....., छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

शरीर-इन्द्रिय-मन से परे...होता है जीव का अस्तित्व...
द्रव्य-भाव-नोकर्म परे...होता है आत्मा का अस्तित्व...

क्रोध-मान-माया-लोभ परे...होता है जीव का अस्तित्व...
क्षुधा-तृषा व काम-मोह परे...होता है आत्मा का अस्तित्व...(1)...

डी.एन.ए., आर.एन.ए. व सेल्स से परे...होता है चेतना का अस्तित्व...
जाति-गोत्र व नाम से परे...होता है जीव का अस्तित्व...

धार्मिक पंथ-मत-रूढ़ि से परे...होता है आत्मा का अस्तित्व...
देश-भाषा व राजनीति से परे...होता है सोल का अस्तित्व...(2)...

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि परे...होता है चैतन्य अस्तित्व...
भाई-बंधु-कुटुम्ब-समाज परे...होता है रूह का अस्तित्व...

कानून-संविधान व राष्ट्र से परे...होता है आत्मा का अस्तित्व...
संकीर्ण शिक्षा व विज्ञान से परे...होता है जीव का अस्तित्व...(3)...

जीव है सच्चिदानंदमय...सत्य शिव सुंदर अविनाशी...
स्वयंभू सनातन स्वयंपूर्ण अमूर्तिक...अविभागी अनंतगुण मय...

शरीर आदि संपूर्ण उक्त विषय/(वर्णन)...कर्मजनित है विकारमय...
यथा बादल-विद्युत-वर्ण आदि...नहीं है आकाश ये तो पुद्गलमय/(भौतिकमय)...(4)...

जीव का शुद्ध स्वरूप परिनिर्वाण...जिसे कहते हैं शुद्ध-बुद्ध-आनंद...
इसे प्राप्त करना ही है परम विकास...'कनकनन्दी' चाहे परम विकास...(5)...

पाड़वा, दिनांक 06.07.2015, अपराह्न 6.10

जैन धर्म की विशेषता : आत्मा ही बनता है परमात्मा

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : आत्मशक्ति.....)

कितना पावन कितना महान्, जैन धर्म है मेरा।
आत्मा को परमात्मा बनाने का, उपदेश देने वाला।। (स्थायी)

आत्मा ही है परमात्मा, कहता है जैन धर्म।
निश्चयनय से शुद्ध दृष्टि से, वर्णन करे आत्म धर्म।।

'सव्वेसुद्धा हु सुद्धणया' से, हर जीव है शुद्ध।
चौरासी लाख योनि मध्य के, हर जीव है शुद्ध।। (1)

कर्म के कारण जीवों के मध्य में, होता है भेद-प्रभेद।
यथा लाल-पीला-काला रंग, मिश्रित पानी में भेद-प्रभेद।।

हर जीव है स्वयंभू सनातन, अविनाशी व अविभागी।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय, सच्चिदानन्द स्वभावी।। (2)

हर जीव स्वयं का ही कर्त्ता-धर्त्ता, स्वतंत्र व स्वयं पूर्ण।
आत्मपतन व आत्मविकास, स्वयं ही है उपादान।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र द्वारा, करता स्वयं का विकास।
इसी से विपरीत आत्म अविश्वास, आदि से करता स्व विनाश।। (3)

इसी हेतु बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल, आदि भी होते निमित्त।
यथा आरोहण व अवतरण हेतु, निशेणी (सोपान) होती निमित्त।।

आत्म विकास द्वारा शुद्ध-बुद्ध बन, बनता है परमात्मा।
परमात्मा बनने के हेतु ही, 'कनकनन्दी' ध्याता स्व आत्मा।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 06.09.2015, प्रातः 9.15

समता परमो धर्म-ध्यान व शांति

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)

श्लोक- साम्यमेवादरात् भाव्य किमन्यै ग्रन्थ विस्तरैः।
प्रक्रिया मात्रमेवेदं वाङ्मयं विश्वमस्य हि।। (32) ध्यानोपदेश कोष

हिन्दी- समता को ही आदर से भाओ...ग्रंथ विस्तार से क्या प्रयोजन...
समता की ही प्रक्रिया मात्र है...समस्त जानो वाङ्मय...

श्लोक- साम्यमेव परं ध्यानं प्रणीतं विश्वदर्शिभिः।
तस्यैव वक्तं ये नूनं मन्येऽयं शास्त्र विस्तरः।। (22/13) ज्ञानार्णव

हिन्दी- समता को ही परम ध्यान...कहा है विश्वदर्शी ने...

इसी के ही कथन के लिए...मानो शास्त्र विस्तार...

श्लोक- माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा वैराग्यं साम्यमस्पृहा।
वैतृष्ण्यं प्रशमः शान्तिरित्येकार्थोऽपि धीयते।। (त.शा. 139)

हिन्दी- माध्यस्थ व समता उपेक्षा...वैराग्य व साम्य अस्पृहा...
वितृष्णा व प्रशम शांति...एकार्थ ही ज्ञातव्य...

श्लोक- चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो सम्मोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हि समो।। (प्र.सा. 7)

हिन्दी- चारित्र ही है परमो/(निश्चय) धर्म...जो होता है समतामय...
मोह-क्षोभ से विरहित परिणाम...आत्मा ही साम्यमय...

समीक्षा

सर्वज्ञ वीतरागी देव ने...समता को ही कहा परम धर्म...
समता में गर्भित है समस्त...आगम का भी मर्म...(1)...

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध शून्य...होता है जीव का शुद्ध परिणाम...
शुद्ध परिणाम ही समता है जो...होता है जीव का निज परिणाम...(2)...

अतः समता में गर्भित सभी...व्रत-नियम-ध्यान-अध्ययन...
तप-त्याग व संयम-साधना...परीषहजय उत्तम दशधा धर्म...(3)...

वैराग्य-निस्पृहता-प्रशम-शांति...समता के ही हैं रूप विभिन्न...
समता बिना ये समस्त गुण...संभव नहीं है आगम प्रमाण...(4)...

रत्नत्रय भी है समतामय...समता बिन न होता रत्नत्रय...
मोक्षमार्ग संवर-निर्जरा-मोक्ष भी...होता है पूर्ण समतामय...(5)...

साम्यभाव बिन कठोर तप भी...पतन के लिए होता है कारण...
यथा द्वीपायन की कठोर तपस्या...बनी थी स्व-पर पतन के कारण...(6)...

सरल है बाह्य तप-त्याग करना...तथाहि शारीरिक कष्ट भी सहना...
पूजा-पाठ व तीर्थयात्रा करना...किन्तु कठिन है समता धरना...(7)...

यथा नारकी व पराधीन कैदी...सहन करते हैं विभिन्न कष्ट...
किन्तु समता से रहित होने से...नहीं होते हैं वे तपस्वी संत...(8)...

समता बिना न होती तपस्या...तथाहि आध्यात्मिक परिशुद्धता...
यथा जड़ शरीर (शव) में आत्मा बिना...नहीं होती है चेतना की सत्ता...(9)...

समता सहित न्यून भी ज्ञान...अल्प भी तप से मिल जाता है मोक्ष...
अतः समता ही सतत सेवनीय...'कनकनन्दी' चाहे परम साम्य...(10)...

पाड़वा, दिनांक 15.07.2015, रात्रि 10.40

धर्म परम सत्य-सर्व सुखकर होने पर भी धर्म से घृणादि क्यों?

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., भातुकली.....)

परम पावन व परम सत्य धर्म से भी क्यों करते हैं घृणा?
सर्वोदय व विश्व हितकर धर्म से, क्यों करते हैं मनमाना? (ध्रुव)

धर्म तो वस्तु स्वभाव है स्व-आत्म स्वभाव भी होता धर्म।
समता शांति व अहिंसा स्वरूप, होता है यथार्थ से धर्म।।

तथापि अधिकांश जन सही, धर्म को न जानते न मानते।
अंधश्रद्धा या स्वार्थवश हो, संकीर्ण कट्टरता से पालते।। (1)

जिसके कारण वे अन्याय अत्याचार पापाचार भी करते हैं।
आक्रमण-युद्ध-हत्या-बलात्कार शोषण-आतंकवाद (आदि) करते हैं।

जिसके कारण अन्य कुछ लोग, धर्म को अच्छा न मानते हैं।
धर्म को मिथ्या आडम्बर ढोंग, भेदभाव कारक मानते हैं।। (2)

भौतिक नैतिक राजनीति को, सच्चा व अच्छा मानते हैं।
सेवा-सहयोग-दान दयादि को, अच्छा मानकर पालते हैं।।

भौतिक आदि से परे/(श्रेष्ठ) है धर्म, सेवादि भी धर्म के अंग हैं।
स्व-अज्ञानता व धर्म विकृति से, धर्म से घृणा करते हैं।। (3)

विद्यालय आदि में तो भौतिक, सेवादि का पाठ पढ़ते हैं।
राजनीति आदि में सेवा-सहयोग, आदि का भी पाठ पढ़ाते हैं।।

तथापि स्व-अज्ञानता (व) धर्म (की) विकृति या धार्मिक क्रियाकाण्डों से।
धर्म से करते हैं भेदभाव, घृणा व विरोध सभी में।। (4)

ऐसा करके वे परम पावन, परम सत्य का विरोध करते।
स्व-पर विश्व के परम हित का, प्रत्यक्ष परोक्ष विरोधी बनते/(करते)।।

इसलिए सभी को सत्य धर्म का, यथार्थ परिज्ञान चाहिए।
स्व-पर-विश्व कल्याण हेतु, 'कनक' सत्यार्थ धर्म सेईए/(कीजिए)।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 10.01.2016, मध्याह्न 2.50

''आवश्यकता से अधिक : वर्चस्व व प्रसिद्धि हेतु अधिक पाप करते हैं नीच-मानव''

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

भोजन पानी व वस्त्र निवास हेतु जितना पाप करते हैं मानव।
उससे भी अधिक वर्चस्व/(प्रसिद्धि) हेतु पाप करते हैं नीच मानव।। (ध्रुव)

वर्चस्व हेतु आक्रमण युद्ध लूट-पाट-हत्या बलात्कार करते।
सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि आडम्बर वर्चस्व हेतु मानव करते/(चाहते)।।

फैशन-व्यसन-दिखावा ढोंग, वर्चस्व हेतु भी मानव करते।
पढ़ाई नौकरी राजनीति तानाशाही वर्चस्व हेतु भी करते।। (1)

गाड़ी बंगला-यान-वाहन गृहोपकरण-वस्त्र-अलंकार।
विवाह उत्सव जन्म जयंती आदि वर्चस्व के भी है रूपांतर।।

धर्म से लेकर राजनीति तक वर्चस्व हेतु करते षड्यंत्र।
परिवार समाज राष्ट्र-अंतराष्ट्र तक वर्चस्व हेतु (से) होते संत्रस्त।। (2)

वर्चस्व के कारण इन सभी क्षेत्रों में होते है धोखाधड़ी व लंदफंद।
वाद-विवाद से लेकर फूट-लूट आक्रमण युद्ध व आतंकवाद।।

धर्म से लेकर राजनीति तक व्यक्ति से लेकर संगठन तक।
वर्चस्व हेतु परस्पर में होता वाद-विवाद से लेकर विनाश तक।। (3)

भरत-बाहुबली युद्ध से लेकर महाभारत के महायुद्ध तक।
वर्चस्व हेतु सिकन्दर के आक्रमण से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध तक।।

हर देश के राजाओं के युद्ध व व्यापारी कवि कलाकार विद्वान् तक।
हर धर्म-पंथ-मत विचार वाले वर्चस्व हेतु संघर्षरत।। (4)

इसी प्रकार प्रसिद्धि हेतु भी करते उपरोक्त अयोग्य काम।
वर्चस्व हेतु प्रसिद्धि चाहिए, प्रसिद्धि हेतु भी वर्चस्व के काम।।

इससे न सही विकास होता, शांति-संतुष्टी भी नहीं मिलती।
स्व-पर-विश्व को क्षति पहुँचती इह-परलोक में दुर्दशा होती।। (5)

इसी हेतु ही अनेक राजा-महाराजा सेठ-साहूकार (भी) बनते है निस्पृह साधु।
समस्त प्रकार वर्चस्व प्रसिद्धि त्यागकर आत्म साधना से बनते विभु।।

सर्वोच्च सफलता व सर्वोच्च प्रसिद्धि मिलती है आध्यात्मिक शांति से।
इसी उपलब्धि हेतु कनकनन्दी, वर्चस्व/(प्रसिद्धि) त्यागा है नवकोटि से।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 12.01.2016, रात्रि 7.43

सार्वभौम एवं सर्वोदयी सफलता के सूत्र

सफलता पाते चलो! पाने चलो!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : चलो दिलदार चलो.....)
सफलता पाते चलोऽऽऽ लक्ष्य को प्राप्त करोऽऽऽ
सभी बंधन तोड़ोऽऽऽ पावन-उदार बनोऽऽऽ

आत्म-विश्वासी बनोऽऽऽ व्यापाक ज्ञान करोऽऽऽ
आत्म अनुशासी बनोऽऽऽ धैर्य से आगे बढ़ोऽऽऽ...(1)...

तुझमें अनंत शक्तिऽऽऽ स्व-शक्ति का ध्यान करोऽऽऽ
शक्ति जागृत करोऽऽऽ प्रगति पथ पे चलोऽऽऽ

शक्ति क्षीण न करोऽऽऽ अपव्यय नहीं करोऽऽऽ
नकल भी नहीं करोऽऽऽ प्रतिस्पर्द्धा बिन चलोऽऽऽ...(2)...

आगे तू बढ़े चलोऽऽऽ विरोध/(भाव, व्यक्ति, परिस्थिति) पार करोऽऽऽ

निन्दक की चिन्ता छोड़ोऽऽऽ लक्ष्य को/(सफलता) प्राप्त करोऽऽऽ

सफल होने परऽऽऽ घमण्डी/(दंभी) नहीं बनोऽऽऽ

विरोध नहीं होंगेऽऽऽ निन्दक (भी) नहीं होंगेऽऽऽ...(3)...

आगे बढ़ते जाओऽऽऽ अनुभव प्राप्त करोऽऽऽ

सरल होगा मार्गऽऽऽ अन्यथा न संभवऽऽऽ

पानी के बिना कभीऽऽऽ तैरना न संभवऽऽऽ

चलना बिना कभीऽऽऽ अनुभव न संभवऽऽऽ...(4)...

तैराकी हेतु पानीऽऽऽ बनता सहयोगीऽऽऽ

तथाहि अनुभव/(विरोध) भीऽऽऽ मार्ग में सहयोगीऽऽऽ

आत्मशक्ति बढ़ेगीऽऽऽ सफलता प्राप्त होगीऽऽऽ

आत्म-उपलब्धि हीऽऽऽ सफलता है 'कनक' कीऽऽऽ...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 16.01.2016, रात्रि 10.54

सिद्धि बनाम प्रसिद्धि

सिद्धि से अनंत सुख है तो प्रसिद्धि की चाह से अनेक दुःख

(सम्यक् प्रसिद्धि एवं असम्यक् प्रसिद्धि)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

स्वात्मोपलब्धि रूपी (मुझे) सिद्धि चाहिए...ख्याति पूजा (रूपी) प्रसिद्धि नहीं चाहिए।
सिद्धि (मेरा) शुद्ध आत्म-स्वभाव/(स्वरूप) है...प्रसिद्धि तो कर्मजनित
विभाव है।।...(स्थायी)...

सिद्धि से प्राप्त होता अनंत सुख...अनंत ज्ञान दर्शन वीर्यादि रूप...
प्रसिद्धि कामना से न मिले सिद्धि सुख...ईर्ष्या घृणा तृष्णा आदि अनेक दुःख...

सिद्धि हेतु ख्याति पूजा का त्याग चाहिए...प्रसिद्धि हेतु ख्याति पूजा लाभ चाहिए...
सिद्धि मिले ईर्ष्या घृणा तृष्णा त्याग से...ईर्ष्या घृणादि बढ़े प्रसिद्धि चाह से...(1)...

प्रसिद्धि हेतु धन-जन-मान चाहिए...अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा भी चाहिए...
इस हेतु भेड़-भेड़िया चाल चाहिए...लंद-फंद-द्वंद्व-संक्लेश चाहिए...

शांति-कुंथु-अरह तीनों पद त्यागे...सत्ता-संपत्ति-कीर्ति से परे हो गये...
जिससे उन्हें मिली परम सिद्धि...प्रसिद्धि की चाह से न मिले सिद्धि...(2)...

तीर्थंकर कोई बनना चाहे कीर्ति इच्छा से...मिथ्यादृष्टि बन जाता (वह) तत्काल में...
मोक्ष हेतु यदि कोई चाहे उत्तम शरीर...उसकी चाह है सम्यक्त्व व श्रेष्ठतर...

यश कीर्ति नाम कर्म उदय होने से...पावन भाव-वचन व व्यवहार से...
दान दया सेवा व परोपकार से... प्रसिद्धि सहज ही होती उत्तम कार्य से...(3)...

ऐसी प्रसिद्धि है स्वागत योग्य...नवकोटि से भी ग्रहण करने योग्य...
इसके प्रशंसक करते सातिशय पुण्य...गुणानुमोदक प्रमोदक वे श्रेष्ठ सज्जन...

यदि कोई प्रसिद्धि हेतु करे काम...वह न करता सातिशय पुण्य काम...
उसकी प्रशंसा से न मिले सातिशय पुण्य...पापानुमोदक स्वार्थ पर दोषवर्द्धक...(4)...

देवशास्त्र गुरुवाणी प्रशंसा योग्य...सिद्धि हेतु हर काम करने योग्य...
प्रसिद्धि योग्य भाव-काम भी योग्य... 'कनक' चाहे सिद्धि योग्य ज्ञान-वैराग्य...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 18.01.2016, रात्रि 8.02

व्यक्त या शक्ति रूप से मैं हर जीव को भगवान् मानता हूँ

(स्व-पर समस्त जीवों को मैं एक समान मानता हूँ)

(चाल : तेरे प्यार का.....(एकान्त मौन में.....))

स्व-पर को मानता हूँ मैं आत्म स्वरूप,
निगोद से लेकर मानव तक।
यथा भौतिकवादी मानते सभी (ही) जड़ रूप,
तथाहि मैं मानता हूँ हर जीव चैतन्य रूप।। (1)

अणु से लेकर जीव व ब्रह्माण्ड तक,
सभी को मानते भौतिकवादी जड़ रूप।
तथाहि मैं मानता हूँ हर जीव सच्चिदानंद,
एकेन्द्रिय से लेकर सिद्ध जीव पर्यंत।। (2)

अणु से लेकर संपूर्ण ब्रह्माण्ड भौतिक रूप,

हवा पानी (व) सूर्य चन्द्र निहारिका तक।
बैक्टेरिया वाइरस व पशु-पक्षी मानव,
भौतिकवादी माने सभी को भौतिक तत्त्व।। (3)

तथाहि मैं मानता हर जीव चैतन्य,
चैतन्य दृष्टि से हर जीव (तो) समान।
भौतिक कर्म के कारण (भले) जीवों में भिन्नता,
भौतिक कर्म रहित हर जीव में समानता।। (4)

शरीर-मन-इन्द्रियादि कर्म जनित,
इसी से परे हर जीव चैतन्य रूप।
मैं तो अध्यात्मवादी देखता हूँ चैतन्य रूप,
कर्म से परे सभी जीव अमूर्त/(चैतन्य) रूप।। (5)

अतः मेरी दृष्टि में सभी जीव जिन/(भगवान्) रूप,
बीज में यथा सुप्त रूप में वृक्ष निहित।
(अतः) छोटा-बड़ा नहीं मेरी दृष्टि से/(में),
परम साम्य भाव आध्यात्मिक दृष्टि से/(में)।। (6)

अतएव किसी से भी नहीं (मेरा) राग-द्वेष,
ईर्ष्या-घृणा-मोह आसक्ति विषम-भाव।
व्यवहार से जानता हूँ (मैं) विभिन्न/(विकृत) रूप,
भिन्न से परे मेरा भाव अभिन्न रूप।। (7)

इसी से सर्वोदय-अन्त्योदय होती भावना,
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य माध्यस्थ भावना।
समता शक्ति वात्सल्य भावना होती,
'कनक' की आध्यात्मिक विशुद्धि होती।। (8)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 18.01.2016, रात्रि 12.50 से 1.37

संदर्भ-

जैन सिद्धांत के अनुसार हृदय कमल में आठ पाँखुड़ी के आकार का द्रव्यमन होता है और उस द्रव्यमन से शिक्षा, उपदेश, वचनादि का ग्राहक भाव मन होता है।

वैसे तो एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक में भी कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान तथा आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि संज्ञाएँ होने के कारण उनमें भी कुछ क्रिया एवं प्रतिक्रिया होती है तथा वे भी सुख-दुःख अनुभव करते हैं तथापि जिस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव उपदेश को ग्रहण करता है शिक्षा को प्राप्त करता है, मनन करता है, चिंतन करता है, सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकता है, संयम को धारण कर सकता है, मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, उसी तरह अन्य जीव नहीं कर सकते हैं।

चौदह जीवसमास-1. बादर एकेन्द्रिय, 2. सूक्ष्म एकेन्द्रिय, 3. द्वीन्द्रिय, 4. त्रीन्द्रिय, 5. चतुरिन्द्रिय, 6. असंज्ञी पंचेन्द्रिय, 7. संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन 7 के पर्याप्त एवं अपर्याप्त भेद होते हैं। इस कारण 7x2=14 जीवसमास हो जाते हैं।

आहार, शरीर, इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास, भाषा मन ये षट् पर्याप्ति हैं, इनमें से जो एकेन्द्रिय जीव है उनको तो केवल आहार, शरीर, एक स्पर्श इन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी पंचेन्द्रियों के चार ये पूर्वोक्त और भाषा तथा मन ये छहों पर्याप्तियाँ होती हैं और शेष जीवों के मन रहित पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। पर्याप्त अवस्था में संज्ञी पंचेन्द्रियों के 10 प्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रियों के मन के बिना 9 प्राण, चौइन्द्रियों के मन और कर्ण के बिना 8 प्राण, तेइन्द्रियों के मन, कर्ण और चक्षु के बिना 7 प्राण, दो इन्द्रियों के मन, कर्ण, चक्षु और घ्राण के बिना 6 प्राण और एकेन्द्रियों के मन, कर्ण, चक्षु, घ्राण, रसना तथा वचनबल के बिना 4 प्राण होते हैं। अपर्याप्त अवस्था के धारक जीवों में संज्ञी तथा असंज्ञी इन दोनों पंचेन्द्रियों के श्वासोच्छ्वास वचन बल और मनोबल के बिना 7 प्राण होते हैं और चौइन्द्रिय आदि एकेन्द्रिय पर्यंत शेष जीवों के क्रमानुसार एक-एक प्राण घटता हुआ है।

जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। 13
मार्गणागुणस्थानैः चतुर्दशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात्।
विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाःखलु शुद्धनयात्।।

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to Margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणा स्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही है।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध है ही परन्तु संसारी जीव भी शुद्ध है क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादित विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त हैं। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत है और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद-प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्यश्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अंतर्भेद हो जाते है और उस अंतर्भेद में भी अनेक प्रभेद होते हैं। इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।

1. मार्गणा-

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।

ताओ चोद्दस जाणे सुण्णाणे मग्गणा होंति।। (141) गोम्मट्टसार जीवकाण्ड

जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं-अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी हैं।

अयोग्य शिष्य व सुयोग्य शिष्य

(कलिकाल (पञ्चम काल) के कुटिल-जड़ स्वभावी जन)

(चाल : बड़ा नटखट है रे....., जिंदगी इक सफर है....., सायोनारा....., ऐ के लाल दरवाजे.....)

हाय रे! पञ्चम/(कलि)..काल के जन/(लोग)...जड़ व कुटिल..तेरे स्वभाव...
श्रद्धा-प्रज्ञाहीन..जड़ स्वभाव...धूर्त-पाखण्ड..तेरे स्वभाव...
सत्य-समता..रहित भाव...हो...हाय रे!...(स्थायी)...

हुण्डा अवसर्पिणी..काल के जन...बगल में छुरी..मुँह में राम नाम...
भेड़-भेड़िया व..बगुला सम...काम तेरे..मंथरा-शकुनि सम...
पर सुख कातर..तेरे काम...हाय रे!...(1)...
मिथ्यात्व सहित..जन्म है तेरे...निरतिशय पुण्य व..पाप है तेरे...
भौतिकता में..आसक्ति घनेरे...अस्त-व्यस्त व..संत्रस्त घनेरे...
तनाव उदासीन..दबाव (डिप्रेशन) घनेरे...हाय रे!...(2)...
संकीर्ण-लौकिक..स्वार्थ सहित...पढ़ाई-धर्म आदि..काम समस्त...
फेम-नेम व..गेन के हेतु...तेरे भाव-व्यवहार..पाप के हेतु...
सर्वगुण काञ्चन..माश्रयन्ते (स्व) भाव...हाय रे!...(3)...
अधभरी घघरी..रिक्त चना सम...ढोल के समान..बाजे घनाघन...
ज्ञान-ध्यान-दान/(त्याग)..अनुभवहीन...दिखावा-आडम्बर..वाचालतापूर्ण...
गुणविहीन बहु..जल्पयन्ति सम...हाय रे!...(4)...
निन्दा-चुगली व..छिद्रान्वेषण (युक्त)...जोंक-मच्छर सम..पर पीड़ा युक्त...
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा..द्वंद्व/(कलह) सहित...फूट-लूट व..संक्लेश सहित...
निन्दा रस सेवी..कलह प्रिय...हाय रे!...(5)...
पर-उपदेशी..रायचन्द सम...धोबी-गधा व..टॉर्च के सम...
सुमेरू सम स्व..दोष न दिखते...अन्य के गुण भी..दोषमय दिखते...
पृष्ठ माँस भक्षी..सम स्वभाव...हाय रे!...(6)...
दया-दान-सेवा..परोपकार रिक्त...शोषण-मिलावट..ठगी सहित...
इह-परलोक..अपकार सहित...मृत्यु अनंतर..दुर्गति सहित...
चार्वाक सम..भौतिकवाद सहित...हाय रे!...(7)...
(कुछ) निकट भव्य उक्त..दुर्गुण रिक्त...श्रद्धा-प्रज्ञा व..त्याग सहित...
विनम्र सत्यग्राही..धर्म सहित...दान दया सेवा..परोपकार युक्त...
'कनक' ऐसे व्यक्ति को..माने धार्मिक...हाय रे!...(8)...
ऐसे भव्यों को ही गुरु..देते उपदेश...अयोग्य व्यक्ति को न..देते उपदेश...
भद्र मिथ्यादृष्टि को भी..देते उपदेश...सनम्र सत्यग्राही जो..उदार चित्त...
आगम में विस्तार से..यह सब वर्णित...हाय रे!...(9)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 16.01.2016, मध्याह्न 2.17

कलिकाल एवं उसकी समस्याएँ

आध्यात्मिक युग-चतुर्थ काल (सत्य, द्वापर, त्रेता) के अनंतर पंचम काल-कलिकाल का आगमन होता। इस काल में तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुष नहीं होते हैं। मोक्ष प्राप्ति भी इस युग में नहीं होती है। मनुष्य में कलुषता आ जाती है। भोग-भूमि में शीत-उष्ण, क्रूर पशु-पक्षी, विषाक्त कीट-पतंग, तथा शारीरिक रोगादि भी नहीं होते थे। चतुर्थ काल में शीत-उष्ण आदि प्रकोप बढ़ते-बढ़ते पंचम काल में ये प्रकोप अधिक बढ़ गये। भोजन सामग्रियों की गुणवत्ता में ह्रास होता गया। ज्ञान, वैराग्य, शक्ति, चारित्र में भी गिरावट आई।

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा देखे स्वप्नों का जो फल भद्रबाहु स्वामी ने भविष्यवाणी रूप से घोषणा की थी वह घोषणा आज सत्य साबित हो रही है। चन्द्रगुप्त मौर्य का स्वप्न-स्वप्न ही नहीं रहा किन्तु वास्तविक रूप में परिणमन होते हुए अनुभव में आ रहा है। तीसरे स्वप्न में चन्द्रमण्डल का बहुत छिद्र युक्त देखने का फल, कलिकाल में जिनमत में अनेक मत, संप्रदाय, पंथ के प्रादुर्भाव होने का निर्णय भद्रबाहु स्वामी ने किया था। उसका वास्तविक रूप से आज अहिंसा परायण, साम्यवादी, अनेकांत एवं स्याद्वाद के पुजारी जैनियों में अनेक मतभेद होते जा रहे हैं। जो धर्म समस्त विवादों का विनाशक एवं समता, एकता का विधाता था आज उसी धर्म में छोटी-छोटी बातों को लेकर तनाव विवाद, मन-मुटाव मुकदमा, शीत युद्ध चल रहा है। इसमें केवल साधारण जैन ही भाग नहीं ले रहे हैं किन्तु विशिष्ट श्रावक नेता, कर्णधार पंडित ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, मुनि, आचार्य, आर्यिका, उपाध्याय आदि भी सक्रिय भाग ले रहे हैं। पहले दीपक के नीचे अंधकार रहता था, किन्तु वैज्ञानिक युग में बल्ब, ट्यूब आदि के ऊपर अंधकार है, इसी प्रकार पहले मिथ्या-कुधर्म में विवाद आदि होता था परन्तु आज जैन धर्म में भी अधिक विवाद हो रहा है, यह सब कर्म दोष से संकुचित स्वार्थांध मनोभाव से कलियुग के प्रभाव से हो रहा है। कलियुग की दयनीय परिस्थिति का चित्रण करते हुए चित्रकों ने यथार्थ से कहा है-

सीदंति संतो विलसंत्यसंतः पुत्रा म्रियंते जनकंश्चिरायुः।
परेषु मैत्री स्वजनेषु वैरं पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि।।

हे विश्व के लोग! कलिकाल के आश्चर्यपूर्ण कौतुक को देखिये। इस कलिकाल में सज्जन लोग दुःखित होते हैं तथा दुर्जन लोग प्रभाव को प्राप्त होते हैं, पुत्र का मरण

होता है तथा पिता दीर्घजीवी होता हैं। दूसरों से मित्रता करते है तथा स्वजन से वैरभाव रखते हैं।

अनृते पटुता चौरे चित्तं सतामपमानता। (पुत्राः पितुर्द्वेषिणः)
मतिरविनये धर्मे शाठ्यं गुरुष्वपि वंचना।।
ललित मधुर वाक् प्रत्यक्षे परोक्ष विभाषिणी।
कलियुग महाराजस्यैताः स्फुरन्ति विभुतयः।।

झूठ बोलने में चतुर, दक्ष, चोरी में दत्तचित्त, सज्जनों का अपमान, पुत्र-पिता से द्वेष करने वाला, अविनित मति, धर्म में शठता (मायाचारी) गुरु की भी वंचना प्रत्यक्ष में ललित मधुर वचन बोलना एवं परोक्ष में विपरीत भाषण करना यह सब कलियुग महाराज के वैभव का विस्तार है।

धर्मः प्रज्वलितस्तपः प्रचलितं, सत्यं च दूरे गतं।
पृथ्वी मन्दफला नृपोऽति कुटिलो, लौल्यं गता ब्राह्मणाः।।
लोका स्त्रीषु रताः स्त्रीयोऽति चपलाः शास्त्रागमे विप्लवः।
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रविष्टे कलौ।।

कलिकाल के प्रवेश से धर्म एवं प्रज्वलित तप चलायमान हो जाते हैं, सत्य दूर भाग जाता है, पृथ्वी कम फल देने वाली हो जाती है, राजा अत्यंत कुटिल तथा ब्राह्मण अत्यंत लोलुपी हो जाते हैं, लोग स्त्री में आसक्त रहते हैं, स्त्री अत्यंत चंचल हो जाती है, शास्त्र-आगम में अनेक विप्लव होते हैं, साधु दुःख पाते हैं, दुर्जन लोग प्रभाव को प्राप्त करते हैं।

निर्वीर्यो पृथ्वी, निरौषधिरसो, नीचा महत्वं गताः।
भूपाला निज कर्म धर्म रहिता, विप्राः कुमार्गे रताः।।
भार्या भर्तृ विरोधिनी परतता पुत्राः पितृद्वेषिणो।
हा! कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या नराः सज्जनाः।।

दुःख की बात है कि कलियुग में पृथिवी वीर्यहीन (सारहीन) हो जाती है, रस, प्राण शक्ति को देने वाली औषधि रहित पृथ्वी हो जाती है, नीच लोग महत्त्व को प्राप्त हो जाते हैं, राजा लोग स्व-कर्त्तव्य एवं धर्म से रहित हो जाते हैं, ब्राह्मण लोग कुमार्ग में गमन करते हैं, स्त्री (भार्या) पति विरोधिनी होकर पर पुरुष में रत होती है, पुत्र पिता के द्वेषी हो जाते हैं। इसी प्रकार भयंकर कलियुग में जो नर धर्म, नीति, नियम का

पालन करते हैं, वे धन्य हैं।

धन्या भारतवर्ष संभवजना योऽद्यापि काले कलौ।
निस्तीर्थेश्वर केवले निरवद्यो भ्रश्यन्मनःपर्ययः।।
त्रुट्यच्छोत्र विशेष संपदि भव दौर्गत्य दुःखापदि।
श्री जिनेन्द्रवचोनुरागवशतः कुर्वित धर्मोद्यतम्।।

वर्तमान घोर पंचम कलिकाल में तीर्थंकर केवली, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानियों का अभाव है, योग्य श्रोताओं का भी अभाव है, विशेष वैभव से रहित, दरिद्रता आदि संकट से सहित कलियुग के मनुष्य हैं। इस प्रकार विपरीत (विषम) कलियुग में भी श्री जिनेन्द्र देव के वचनानुसार धर्म में उद्यत होते है वे अत्यंत अभिवंदनीय, अभिनंदनीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

प्राचीन काल में अर्थात् चतुर्थ काल में धर्म साधन के अनुकूल परिस्थिति थी। इसीलिए उस समय में धर्म का आचरण करना सरल साध्य था, परन्तु वर्तमान पंचम काल में विपरीत परिस्थिति में धर्म का आचरण कष्ट साध्य है। जैसे अनुकूल जल के स्रोत में नौका को खेकर ले जाना श्रम साध्य है। जो प्रतिकूल स्रोत में एवं तूफान के समय में नौका खेकर अपने गंतव्य स्थान में बढ़ते हैं, वह जैसे धन्यवाद के पात्र हैं उसी प्रकार उपर्युक्त कलिकाल में जो धर्म का श्रद्धापूर्वक, विवेकपूर्वक पालन करते हैं वे धन्य है। कलिकाल में अधिकांश लोग श्रद्धा, विवेक एवं आत्मकल्याण की बुद्धि से रहित होकर धर्माचरण अहंकार की पुष्टि, ख्याति, लाभ, कीर्ति के लिए करते हैं। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है-

भयं दाक्षिण्यं कीर्ति च लज्जया आशा तथैव च।
पंचभि पंचमकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते।।

पंचमकाल में लोग जैन धर्म को (1) लोकभय से (2) अपनी योग्यता को प्रदर्शन करने के लिए (3) कीर्ति के लिए (4) लज्जा से (5) आशा से पालन करेंगे।

श्रद्धा, विवेक, आत्म विशुद्धि से रहित होकर कुछ संकुचित स्वार्थनिष्ठ मनोभाव से धर्माचरण के कारण जब उस संकुचित भाव को धक्का लगता है, तब वे धर्म से उस प्रकार टूट पड़ते हैं जिस प्रकार रत्न के समान प्रतिभासित काँच थोड़े से धक्के के कारण टूटकर नीचे गिर पड़ता हैं। परन्तु यथार्थ से जो रत्न होता है वह सामान्य धक्के से टूटकर नहीं गिरता है। इस प्रकार जो यथार्थ धर्मात्मा होता है वह सामान्य प्रतिकूल

अवस्था से प्रतिघातित होकर धर्म से च्युत नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि जो छोटी-छोटी बातों को लेकर धर्म में कलह उत्पन्न करके धर्म, समाज, राष्ट्र, देश में फूट डालकर आतंकवाद मचा देते हैं वे यथार्थ से धर्मात्मा नहीं हैं।

आधुनिक इतिहास पुराण से ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व से लेकर प्रायः 19वीं शताब्दी तक का इतिहास आक्रमणकारी, लुटेरे, उपनिवेशक, तानाशाही दूसरों के धर्मस्थल, सभ्यता, संस्कृति, मंदिर, मूर्ति, साहित्य आदि के विध्वंस करने वाले, दूसरों के खून के प्यासे बहुत हुए हैं। यथा-सिकंदर, अशोक, नंदवंशी राजा, तैमुरलेंग, नादीर शाह, चंगेजखाँ, मुहम्मद गौरी, बाबर, अकबर, औरंगजेब, नेपोलियन, मुसोलिन, हिटलर, अनेक अंग्रेजी शासक। इस काल में विशेषतः एक संप्रदाय वाले अन्य संप्रदाय वालों के राज्य को, सभ्यता, संस्कृति, महिला, लोगों को लूटने में ध्वंस करने में लगे रहे। धार्मिक वाद-विवाद, धर्मान्तरण चरम सीमा पर था। इस युग को हम धर्मांध-युग-मतांध-युग-धर्ममूढ़ता-युग-बलात् धर्मांतरण युग या अंधकार-असभ्य-क्रूर-ईर्ष्यालु युग कह सकते हैं। इस युग में ही सिकंदर ने दूसरों के देशों को लूटा, अशोक ने रक्त की नदी बहाई, शक, हूण, मुगल, मुसलमानों ने भारत को निर्दयता-क्रूरतापूर्वक लूटा, बक राक्षस के समान बाहर से सफेद अंदर से काले वाले अंग्रेजों ने भारत सहित अनेक देशों को छल, बल, कौशल, दाम, दण्ड, भेद से उपनिवेश बनाया, लूटा, क्रूरतापूर्वक कुचला एवं स्वार्थ के लिए बनाया हुआ कानून के द्वारा न्याय का झूठ-मूठ बहानाबाजी करके दूसरों को रौंदा, प्राणदण्ड-जेलदण्ड दिया। इस अंधकारपूर्ण संकीर्णता के युग में जातिवाद, नस्लवाद, गोरा-काला, भेद-भावादि अति अविवेकपूर्ण घृणित रूप में थे। कुछ मुट्ठीभर सत्ता सम्पन्न लोगों की क्रूर, रक्तरंजित पंजों में अरबों भोले-भाले, निर्दोष मनुष्य नारकीय यातनाएँ सहन करने के लिए विवश थे। इस ही काल में प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध हुए।

विनय का व्यापक स्वरूप व फल

(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-संयम-तप-पूजा-प्रार्थना-प्रशंसा-बहुमान-सत्कार-सेवा-दान आदि प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से विनय का व्यापक रूप है व इन सबकी उपलब्धि-सातिशय-पुण्य-स्वर्ग-मोक्ष इसके प्रत्यक्ष-परोक्ष-परम्परा के फल।)

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की....., चौपाई.....)

विनय के व्यापक स्वरूप को जानो नवकोटि से विनय को मानो/(अपनाओ)।

गुण-गुणी प्रति विनय करो, स्वर्ग (व) मोक्ष सुख वरण करो।। (1)

दर्शन-ज्ञान-चारित्र तप विनय औपचारिक रूप में पंच विनय।
उक्त गुणों का विनय (है) गुण विनय, गुण युक्त गुरु विनय गुणी विनय।। (2)

ऐसा ही यथायोग्य देव-शास्त्र विनय इसी से होता है सम्यग्दर्शन।
ज्ञान-चारित्र-तप यथार्थ/(इसी से) होते स्वर्ग मोक्ष सुख/(फल) इसी से मिलते।। (3)

श्रद्धा भक्ति सत्कार बहुमान, स्वागत पूजा व आरती वंदन।
आसनदान स्तुति गुण कीर्तन दान सेवा आदि विनय-सम्मान।। (4)

(समक्ष) उपस्थित में होता प्रत्यक्ष विनय अनुपस्थित में परोक्ष विनय।
तथाहि केवल प्रार्थना/(आरती) पूजन तीर्थ वंदना/(स्तुति) ही नहीं पूर्ण विनय।। (5)

नमोऽस्तु करना ही नहीं पूर्ण विनय, उक्त सभी गुण होते पूर्ण विनय।
विनय पाठ ही नहीं पूर्ण विनय शारीरिक प्रत्यक्ष ही नहीं पूर्ण विनय।। (6)

विनय मोक्ष के द्वार स्वरूप सर्व कल्याणदायक/(अंतरंग) तप स्वरूप।
निरहंकार व गुणग्राही स्वरूप, भाव विशुद्धि आर्जव स्वरूप।। (7)

पाप नाशक सातिशय पुण्य कारक उच्च गोत्र-कीर्ति सुंदर रूप दायक।
श्रद्धा-प्रज्ञा-चारित्र प्रदायक अतएव विनय करे सतत 'कनक'।। (8)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 15.01.2016, (मकर संक्रांति) रात्रि 8.15

संदर्भ-

जस्संतियं धम्मवहं णिगच्छे तस्संतियं वेणइयं-पउंजे।
सक्कारए तं सिर-पंचएण काएण वाया मणसा वि णिच्चं।। (34)

षट्.पृ.54

जिसके समीप धर्म-ज्ञान प्राप्त करे, उसके समीप विनय युक्त होकर प्रवृत्ति करनी चाहिए तथा उसका शिर-पंचक अर्थात् मस्तक, दोनों हाथ और दोनों जंघाएँ पंचांगों से तथा काय, वचन और मन से निरंतर सत्कार करना चाहिए।

उपरोक्त प्रकरण से सिद्ध होता है कि आचार्य भी त्रिकालवर्ती साधुओं को नमस्कार करते हैं। इसलिए वर्तमान साधुओं को भी नमस्कार करना स्वतः सिद्ध हुआ। वर्तमान काल के तीन कम नौ करोड़ संयमी में भी छट्ठे गुणस्थानवर्ती श्रमण को

स्वीकार किया गया है। निर्ग्रंथ श्रमण के पाँच भेद हैं उनमें भी छट्ठे गुणस्थानवर्ती विभिन्न प्रकार के श्रमण को गर्भित किया गया है जिसे णमोकार मंत्र में भी 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहकर नमस्कार किया गया है।

गुणाधिक मुनि के प्रति व्यवहार

अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं।

अंजलिकरणं पणमं भणिदमिह गुणाधिगाणं हि।। (262) प्र.सार

Meritorious ascetics in this world, it is said, should be welcomed with a stand-up should be greeted with words, should be served, fed and revered, should be saluted with folded hainds and be bowed down to.

खड़े होकर सामने जाना सो अभ्युत्थान है, उनको सत्कार के साथ स्वीकार करना बैठाकर आसन देना सो ग्रहण है, उनके शुद्धात्मा की भावना में सहकारी कारणों के निमित्त उनकी वैयावृत्य करना सो सेवा है, उनके भोजन, शयन आदि की चिंता रखनी सो पोषण है, उनके व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय के गुणों की महिमा करनी सो सत्कार है, हाथ जोड़कर नमस्कार करना सो अंजलीकरण है, नमोस्तु ऐसा वचन कहकर दंडवत करना सो प्रणाम है। गुणों से अधिक तपोधनों की इस तरह विनय करना योग्य है।

समीक्षा-कुंदकुंद देव ने कहा है ''विणय मोक्खद्दारं'' अर्थात् विनय मोक्ष के लिए द्वार स्वरूप है। जैसे-गृह के अंदर प्रवेश करने के लिए द्वार की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार मोक्ष रूपी गृह में प्रवेश करने के लिए विनय रूपी द्वार की आवश्यकता पड़ती है। यह विनय गुण एवं गुण से युक्त गुणी के लिए किया जाता है। विनय सामान्य होते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से होती है। इस सूत्र में संक्षिप्त से विनय का वर्णन किया गया है परन्तु इसका विशेष वर्णन शास्त्रान्तर से नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं-

काइयवाइयमाणसिओ त्ति अतिविहो दु पंचमो विणओ।

सो पुण सव्वो दुविहो पच्चक्खो तह परोक्खो च।। (372) मूला.। पृ.299

कायिक, वाचिक और मानसिक इस प्रकार पाँचवाँ औपचारिक विनय तीन भेद रूप है। पुनः वह तीन भेद रूप विनय प्रत्यक्ष परोक्ष की अपेक्षा से दो प्रकार का है।

अब्भुट्ठाणं किदिअम्मं णवणं अंजलीय मुंडाणं।

पच्चूगच्छणमेत्ते पछिदस्सणुसाहणं चेव।। (373)

केशलोंच से मुंडित हुए अतः जो मुंडित कहलाते हैं ऐसे मुनियों के लिए उठकर खड़े होना, भक्ति पाठपूर्वक वंदना करना, हाथ जोड़कर नमस्कार करना, आते हुए के सामने जाना और प्रस्थान करते हुए के पीछे-पीछे चलना।

णीचं ठाणं णीचं गमणं णीचं च आसणं सयणं।

आसणदाणं उवगरणादाणं ओगासदाणं च।। (374)

गुरुओं से नीचे खड़े होना, नीचे अर्थात् पीछे चलना, नीचे बैठना, नीचे स्थान में सोना, गुरु को आसन देना, उपकरण देना और ठहरने के लिए स्थान देना यह सब कायिक विनय है।

पडिरुवकायसंफासणदा य पडिरूपकालकिरिया य।

पेसणकरणं संथरकरणं उवकरण पडिलिहणं।। (375)

गुरु के अनुरूप उनके अंग का मर्दनादि करना, उनके अनुरूप और काल के अनुरूप क्रिया करना, आदेश पालन करना, उनके संस्तर लगाना तथा उपकरणों का प्रतिलेखन करना।

इच्चेवमादिओ जो उवयारो कीरदे सरीरेण।

एसो काइयविणओ जहारिहं साहुवग्गस्स।। (376)

साधु वर्ग का इसी प्रकार से और भी जो उपकार यथायोग्य अपने शरीर के द्वारा किया जाता है वह सब कायिक विनय है।

पूयावयणं हिदभासणं मिदभासणं च मधुरं च।

सत्ताणुवीचिवयणं अणिट्ठुरमकक्कसं वयणं।। (377)

पूजा के वचन, हित वचन, मित वचन और मधुर वचन, सूत्रों के अनुकूल वचन, अनिष्ठुर और कर्कशता रहित वचन बोलना वाचिक विनय है।

उवसंतवयणमिगिहत्थवयणमकिरियमहीलणं वयणं।

एसो वाइयविणओ जहारिहं होदि कादव्वो।। (378)

कषाय रहित वचन, गृहस्थी संबंध से रहित वचन, क्रिया रहित और अवहेलना रहित वचन बोलना वाचिक विनय है जिसे यथायोग्य करना चाहिए।

पापविसोत्तिअपरिणामवज्जणं पियहिदे य परिणामो।

णादव्वो संखेवेणेसो माणसिओ विणओ।। (379)

पापविश्रुत के परिणाम का त्याग करना, प्रिय तथा हित में परिणाम करना संक्षेप से यह मानसिक विनय है।

इय एसो पच्चक्खो विणओ पारोक्खिओवि जं गुरुणो।

विरहम्मि वि वट्टिज्जदि आणाणिद्देसचरियाए।। (380)

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष विनय है तथा जो गुरु के न होने पर भी उनकी आज्ञा, निर्देश और चर्या में रहता है उसके परोक्ष संबंधी विनय होता है।

अब्भुट्ठाणं सण्णदि आसणदाणं अणुप्पदाणं च।

किदियम्मं पडिरूवं आसणचाओ य अणुव्वजणं।। (382)

गुरुओं को आते हुए देखकर उठकर खड़े होना, उन्हें नमस्कार करना, आसन देना, उपकरणादि देना, भक्ति-पाठ आदि पढ़कर वंदना करना, या उनके अनुकूल क्रिया करना, आसन को छोड़ देना और जाते समय उनके पीछे जाना ये सात भेद रूप कायिक विनय है।

हिदमिदपरिमिद भासा अणुवीचीभासणं च बोधव्वं।

अकुसलमणस्स रोधो कुसलमणपावत्तोओ चेव।। (383)

हित वचन, मित वचन, परिमित वचन और सूत्रानुसार वचन, इन्हें वाचिक विनय जानना चाहिए। अशुभ मन को रोकना और शुभ मन की प्रवृत्ति करना ये दो मानसिक विनय है।

रादिणिए उणरादिणिएसु अ अज्जासु चेव गिहिवग्गे।

विणओ जहारिओ सो कायव्वो अप्पमत्तेण।। (384)

एक रात्रि भी अधिक दीक्षा गुरु में, दीक्षा में एक रात्रि भी न्यून मुनि में, आर्यिकाओं में और गृहस्थों में अप्रमादी मुनि को यथायोग्य यह विनय करना चाहिए।

विनय का फल

विणएण विप्पहीणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा।

विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्लाणं।। (385)

विनय से हीन हुए मनुष्य की संपूर्ण शिक्षा निरर्थक है। विनय शिक्षा का फल है और विनय का फल सर्व कल्याण है।

विणओ मोक्खद्दारं विणयादो संजमो तवो णाणं।

विणएणाराहिज्जदि आइरिओ सव्वसंघो य।। (386)

विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम तप और ज्ञान होता है। विनय के द्वारा आचार्य और सर्वसंघ आराधित होता है।

आयारजीदकप्पगुणदीवणा अत्तसोधि णिज्जंजा।

अज्जवमद्दवलाहवभत्तीपल्हादकरणं च।। (387)

विनय से आचार, जीद कल्प आदि गुणों का उद्योतन होता है तथा आत्मशुद्धि, निर्द्वंद्वता, आर्जव, मार्दव-लघुता, भक्ति और आह्लाद गुण प्रकट होता है।

कित्ती मित्ती माणस्स भंजण गुरुजणे य बहुमाणं।

तित्थयराणं आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा।। (388) पृ.299

कीर्ति, मैत्री, मान का भंजन, गुरुजनों में बहुमान, तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन और गुणों का अनुमोदन ये सब विनय के गुण है।

भगवती आराधना में भी उपर्युक्त उपचार विनय का स्पष्ट वर्णन पाया जाता है।

काइयवाइयमाणसिओत्ति तिविधो हु पंचमो विणओ।

सो पुण सव्वो दुविहो पच्चक्खो चेव पारोक्खो।। (120) (पृ.164)

पाँचवीं उपचार विनय तीन प्रकार की है-कायिक, वाचनिक और मानसिक और वह तीनों प्रकार की विनय दो प्रकार की है प्रत्यक्ष विनय और परोक्ष विनय।

अब्भुट्ठाणं किदियम्मं णवसणं अंजली य मुंडाणं।

पच्चुग्गच्छणमेत्तो पच्छिद अणुसाधणं चेव।। (121)

गुरु आदि के प्रवेश करने पर या बाहर जाने पर अभ्युत्थान खड़े होना, कृतिकर्म अर्थात् वंदना करना, णवसणं अर्थात् शरीर को नम्र करना, दोनों हाथों को जोड़ना, सिर को नवाना, प्रत्युद्गमन अर्थात् गुरु के बैठने अथवा खड़े होने पर उनके सामने जाना और जब गुरु जावे तो उनसे दूर रहते हुए अपने हाथ-पैर को शांत और शरीर को नम्र करके गमन करना और गुरु के साथ जाने पर उनके पीछे अपने शरीर प्रमाण भूमिभाग का अंतराल देकर गमन करें।

णीचं ठाणं णीचं गमणं णीचं च आसणं सयणं।

आसणदाणं उवगरणदाणमोगासदाणं च।। (122)

नीचा आसन-गुरु के पीछे इस प्रकार बैठे कि अपने हाथ 'पैर' श्वास आदि से गुरु को किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे। आगे बैठना हो तो सामने से थोड़ा हटकर गुरु

के वाम भाग में उद्धतता त्याग कर और अपने मस्तक को थोड़ा नवाकर बैठे। आसन पर गुरु के बैठने पर स्वयं भूमि में बैठे। नीचे सोना-अर्थात् जो ऊँचा नहीं हो ऐसे देश में सोना, अथवा गुरु के नाभि प्रमाण मात्र भू-भाग में अपना सिर रहे इस प्रकार सोना। अथवा अपने हाथ-पैर वगैरह से गुरु आदि का संघटन न हो इस प्रकार शयन करें। आसन दान-गुरु बैठना चाहते हैं ऐसा जानकर चक्षु से देखे कि प्रमार्जन के योग्य है या नहीं? पीछे लाघव कोमलता आदि गुणों से युक्त पिच्छी से अत्यंत धीरे से भू-भाग और आसन आदि को पोंछ देवे। उपकरणदान-जिससे ज्ञान और समय का उपकार हो उसे उपकरण कहते हैं। गुरु पुस्तक आदि चाहते हो तो उन्हें देना। अथवा उद्गम उत्पादन आदि दोषों से रहित उपकरण अपने को मिला हो तो उसे देना उपकरण दान है। अवकाशदान-शीत से पीड़ित को वायु रहित स्थान देना और गर्मी से पीड़ित को शीतल स्थान देना अथवा ग्राम नगर आदि में अपना आवास स्थान देना।

पडिरूवकायसंफासणदा पडिरूवकालकिरिया य।

पेशणकरणं संथारकरणमुवकरणपडिलिहणं।। (123)

गुरु आदि के शरीर के अनुकूल स्पर्शन, बालपने आदि अवस्था के अनुरूप वैयावृत्य करना और गुरु आदि की आज्ञा पालन करना, तृण आदि का संथरा करना, उपकरणों की प्रतिलेखना करना।

इच्चेवमानि विणओ उवयारो कीरदे सरीरेण।

एसो काइयविणओ जहारिहो साहुवग्गम्मि।। (124)

इस प्रकार को आदि लेकर उपचार विनय शरीर के द्वारा साधुओं में यथायोग्य की जाती है। यह कायिक विनय है।

वाचनिक विनय

पूयावयणं हिदभासणं च मिदभासणं च महुरं च।

सुत्ताणुवीचिवयणं अणिट्ठुरमकक्कसं वयणं।। (125)

पूजापूर्वक वचन, हितकारी भाषण, मित भाषण, मधुर भाषण, सूत्रानुसार वचन, अनिष्ठुर और अकर्कश वचन वचन विनय है। हे भट्टारक! मैं सुन रहा हूँ, हे भगवन् आपकी आज्ञा हो तो मैं ऐसा करना चाहता हूँ इस प्रकार से पूजापूर्वक वचन बोलना। जो गुरु आदि के लिए इस लोक और परलोक में हितकर हो ऐसा हित भाषण करना। जितना बोलने से विवक्षित अर्थ का बोध हो उतना ही बोलना प्रासंगिक या अप्रासंगिक न बोलना। कानों को प्रिय वचन बोलना, भाषा समिति अधिकार में जो

वचन बोलने योग्य कहे हैं उन्हें ही बोलना तथा दूसरे के चित्त को पीड़ा करने वाले निष्ठुर वचन और कर्कश वचन न बोलना वाचिक विनय है।

उवसंतवयणमगिहत्थवयणमकिरियमहीलणं वयणं।
एसो वाइयविणओ जहारिदो होदि कादव्वो।। (126)

जिसका राग-द्वेष शांत हो गया है उसे उपशांत कहते हैं। उसका वचन उपशांत वचन है अर्थात् राग रहित और रोष रहित का जो वचन होता है वही बोलना चाहिए। गृहस्थ अर्थात् मिथ्यादृष्टि और असंयमी जो योग्य-अयोग्य वचनों को नहीं जानते उनका जो वचन हो वह नहीं बोलना जो वचन वे नहीं बोलते वही बोलना चाहिए। जिस वचन में असि, मसि, कृषि, सेवा, वाणिज्य आदि षट्कर्मों का उपदेश न हो वह बोलना चाहिए तथा जो वचन दूसरे को निरादर न करता हो वह बोलना चाहिए। ये जो वचन कहे हैं इनका बोलना वचन विनय है। उसको यथायोग्य करना चाहिए।

मानसिक विनय

पापविसोत्तिग परिणामवज्जणं पियहिदे य परिणामो।
णायव्वो संखेवेण एसो माणिस्सिओ विणओ।। (127)

पाप शब्द से अशुभ कर्मों को कहा है। स्त्रोत का अर्थ प्रवाह है। प्रवाह की तरह लगातार होने से कर्मों को भी पाप विस्त्रोत शब्द से कहा है। पाप को लाना ही जिनका काम है उन परिणामों को त्यागना चाहिए। यह गुरु विनय का प्रकरण होने से गुरु विषयक अशुभ परिणाम लेना। गुरु के द्वारा अपनी स्वेच्छाचारिता का निवारण करने से क्रोध उत्पन्न होना, शिष्य को अविनयी देख उस पर गुरु कृपा न करे तो 'मुझे पहले की तरह नहीं पढ़ाते हैं न मेरे साथ पहले की तरह वार्तालाप करते हैं इस प्रकार क्रोध करना गुरु की विनय में प्रमाद करना, गुरु की अवज्ञा करना, निंदा करना, उनके प्रतिकूल चलना इत्यादि पाप परिणामों को छोड़ना! और गुरु को जो प्रिय हो और हितकर हो उसमें ही परिणाम लगाना। ये संक्षेप से मानसिक विनय है।'

इय एसो पच्चक्खो विणओ पारोक्खिओ वि जं गुरुणो।
विरहम्मि विवट्टिज्जइ आणाणिद्देसचरियाए।। (128)

यह प्रत्यक्ष विनय है क्योंकि गुरु के सामने की जाती है और गुरु के अभाव में जो उनकी आज्ञा का पालन किया जाता है वह गुरु के परोक्ष में होने से परोक्ष विनय है। 'आप मुमुक्षु हैं आपको ऐसा ही करना चाहिए और कभी भी उसके विपरीत नहीं करना चाहिए' यह आज्ञा निर्देश है। जैसे 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र में

सदा विहार करना चाहिए' इत्यादि।

आचारसार में आचार्य वीरनंदी सिद्धांत चक्रवर्ती ने इसी विषय का प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया है-

पुरो गुरुणां स्थातव्यं न यथेष्टमकोपयन्।

तानापृच्छेद्वचस्तेषां प्रतीच्छेत्तत्परो भवेत्।। (64) (पृ. 33)

गुरुओं के सामने नहीं बैठना चाहिए, उनको कुपित नहीं करके अपनी इच्छित बात को पूछना चाहिए, उनके वचनों को स्वीकार करते हुए उसमें लीन होना चाहिए।

हस्तद्वयेन दातव्यं ज्येष्ठेभ्यः पुस्तकादिकम्।

तत्तद्देयं करद्वन्द्वेनादेयं विनयानतैः।। (65)

अपने बड़े गुरु आदि को दोनों हाथों से पुस्तकादि देना चाहिए, उनके द्वारा दी हुई पुस्तकादि विनयशील पुरुष के द्वारा दोनों हाथों से लेनी चाहिए।

नमोऽस्त्विति नतिः शस्ता समस्तमतसंमता।

कर्मक्षयः समाधितेस्त्वित्यायजिने नते।। (66)

दिगम्बर साधु परस्पर में नमोस्तु ऐसा व्यवहार करें। यदि दिगम्बर साधु को आर्यिका नमस्कार करे तो तेरा कर्मक्षय हो, तुम्हारी समाधि हो ऐसा आशीर्वाद दें।

मेरी शुद्धात्म-अनुप्रेक्षा

-आ. कनकनन्दी

(चाल : भावे वन्दु तो अरिहंत.....)

मैं आत्मा हूँ परमात्मा हूँ...मैं द्रव्य-गुण-पर्याय हूँ।
मैं शुद्ध-बुद्ध आनंद हूँ...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हूँ।।

सत्य समता शांति हूँ मैं...निर्मल व निर्विकार हूँ।
क्षमा-मार्दव-शौच हूँ मैं...सरल-सहज-सुख मैं हूँ।।

संयम-तप-त्याग हूँ मैं...आकिंचन्य ब्रह्मचर्य हूँ मैं।
अहिंसा अपरिग्रह निर्भय हूँ मैं...अचौर्य, निराबाध हूँ मैं।।

श्रद्धा-प्रज्ञा-चारित्र हूँ मैं...अस्तित्व-वस्तुत्व भी हूँ मैं।
मोक्षमार्ग-मोक्ष भी हूँ मैं...पुण्य-पाप रिक्त विशुद्ध हूँ मैं।।

द्रव्य-भाव-नोकर्म (से) परे मैं...तन-मन व इन्द्रिय परे हूँ।
धन-जन व नाम से (भी) परे मैं...जाति-लिंग व भाषा परे हूँ।।

क्षेत्र-काल सीमा से परे मैं...पंथ-मत सीमा से परे।
भेद-भाव से रहित हूँ मैं...शत्रु-मित्र से भी मैं परे।।

मुझमें ही मेरी अनंत शक्ति...मुझमें ही मेरी सभी उपलब्धि।
मुझमें ही मेरे सभी धर्म है...'कनक' मुझमें (ही) मेरे सभी तीर्थ।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 13.01.2016, रात्रि 8.20

आत्मस्वरूप एवं परस्वरूप

सन्दर्भ-

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगोन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।। (27)

I am, one. I am without delusion, I am the knower of things, I am knowable by master ascetics; all other conditions that arise by the union of the not-self are froeign to my nature in every way!

द्रव्यार्थिक नय से मैं एक हूँ, मैं ही पूर्व परावस्थाओं में अनुश्रुत रूप में रहने के कारण मैं एक हूँ यह मेरा है, मैं इसका हूँ इसी प्रकार अभिप्राय से शून्य होने के कारण निर्मम हूँ। शुद्ध नय की अपेक्षा द्रव्य कर्म, भाव कर्म से निर्मुक्त होने के कारण मैं शुद्ध हूँ। स्व-पर प्रकाश होने के कारण मैं ज्ञानी हूँ। अनंत पर्यायों को युगपत् जानने वाले केवलज्ञानी और श्रुतकेवली के शुद्धोपयोग स्वरूप ज्ञान का विषय हूँ, मैं स्वसंवेद्य के द्वारा जानने योग्य हूँ। जो द्रव्य कर्म के संबंध से प्राप्त भाव तथा देह आदि है वे सर्व मेरे से सर्वथा सर्व प्रकार से बाह्य है, भिन्न है।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्यश्री ने स्वयं को अनुभव करने के/ध्यान करने के/प्राप्त करने के कुछ उपाय बताये हैं। भले व्यवहार नय से द्रव्य कर्म आदि के संयोग से जीव में विभिन्न वैभाविक भाव तथा शरीर आदि पाये जाते हैं तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह आत्मा के स्वभाव नहीं है। ये सब पर संयोगज अशुद्ध भाव है। आचार्य कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्मओ णाणदंसणमग्गो।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो सेस सव्वे खय णेमि।।73।।

टीका-यह मैं आत्मा हूँ सो प्रत्यक्ष अखंड, अनंत, चैतन्य मात्र ज्योति हूँ। अनादि, अनंत, नित्य उदयरूप, विज्ञानघन स्वभाव रूप से तो एक हूँ और समस्त

कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, आदान, अधिकरण स्वरूप जो कारकों का समूह उसकी प्रक्रिया से पार उतरा दूरवर्ती निर्मल, चैतन्य अनुभूति मात्र रूप से शुद्ध हैं। जिनका द्रव्य स्वामी है ऐसे जो क्रोधादि भाव उनकी विश्व रूपता (समस्तरूपता) उनका स्वामित्व से सदा ही अपने नहीं परिणमने के कारण उनसे ममता रहित हूँ तथा वस्तु का स्वभाव सामान्य विशेष स्वरूप है इसीलिए चैतन्य मात्र तेज पुँज भी वस्तु है इस कारण सामान्य विशेष स्वरूप जो ज्ञानदर्शन उनसे पूर्ण हूँ। ऐसा आकाशादि द्रव्य की तरह परमार्थ स्वरूप वस्तु विशेष हूँ। इसलिए मैं इसी आत्म स्वभाव में समस्त पर द्रव्य से प्रवृत्ति की निवृत्ति करके निश्चल स्थित हुआ समस्त परद्रव्य के निमित्त से जो विशेष रूप चैतन्य में चंचल कल्लोलें होती थी, उनके विरोध से इस चैतन्य स्वरूप को ही अनुभव करता हुआ अपने ही अज्ञान से आत्मा में उत्पन्न क्रोधादिक भावों का क्षय करता हूँ ऐसा आत्मा में निश्चय कर तथा जैसे बहुत काल का ग्रहण किया जो जहाज या वह जिसने छोड़ दिया है, ऐसे समुद्र के भँवर की तरह शीघ्र ही दूर किये हैं समस्त विकल्प जिसने, ऐसा निर्विकल्प, अचलित निर्मल आत्मा को अवलंबन करता विज्ञानघन होता हुआ यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है।

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्म्यहम्।
आत्मचैतन्यरूपोऽहमहामानंदचिद्घनः।
आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंस्भोऽहगन्तरः।
आत्मकामोहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम्।92।
ईशानोऽस्म्यहमीड्योऽहमनुत्रमपुरुषः।
उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टाद्रहनुतरोऽस्म्यहम्।93।
केवलोऽहं कविः कर्माध्यक्षोऽहं करणाधियः।
गुहाशयोऽहं गोप्ताऽहं चक्षुषश्चक्षुरस्म्यहम्।94।
चिदानन्दोऽस्म्यहं चेताश्रिद्घनश्रिन्मयोऽस्म्यहम्।
ज्योतिर्मयाऽस्म्यहंज्यायान्ज्योतिषांज्योतिरस्म्यहम्।95। (उपनिषद् पृ. 28)

मैं आदि मध्य और अंत से रहित हूँ आकाश के सदृश हूँ, मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ, आनंद चेतन घन हूँ। मैं आनंदामृत रूप हूँ, आत्म संस्थित हूँ, अंतर हूँ, आत्मा काम हूँ और आकाश में परमात्मा परमेश्वर स्वरूप हूँ। मैं ईशान हूँ, पूज्य हूँ, उत्तम पुरुष

हूँ, उत्कृष्ट हूँ, उपदृष्टा हूँ और पर से भी परे हूँ। मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्माध्यक्ष हूँ, कारण का अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ, और नेत्रों का नेत्र हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, चेतना देने वाला हूँ, चिद्घन और चिन्मय हूँ, मैं ज्योतिर्मय हूँ, और मैं ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हूँ।

हितकारी व अहितकारी ज्ञान

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

उथली जानकारी खण्डित ज्ञान, अति भयंकर है विपरीत ज्ञान।
हिताहित विवेक सह अल्प सुज्ञान, हितकारी होता है अनुभव ज्ञान।।

हित की प्राप्ति (व) अहित परिहार, विवेक सहित ज्ञान होता सुज्ञान।
इसी से विपरीत होता कुज्ञान, संकीर्ण एकांगी अनुभव शून्य ज्ञान।।
सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, अहित को हित, हित को अहित।
अपूर्ण को पूर्ण, पूर्ण को अपूर्ण, हेय को उपादेय, उपादेय को हेय।। (1)

अनुभव रहित उथला जो ज्ञान, स्व-पर अपकारी विशाल ज्ञान।
आचरण रहित जो सब ज्ञान, नहीं होते हैं यथार्थ सुज्ञान।।
सुज्ञान होता है उपकारी ज्ञान, आचरण युक्त अनुभव ज्ञान।
समन्वय युक्त (व) सापेक्ष सहित, क्रमबद्ध (व) सूक्ष्मता सहित।। (2)

इसी हेतु चाहिये स्वाध्याय मनन, संकीर्णता व पूर्वाग्रह विसर्जन।
सनम्र सत्यग्राही जिज्ञासु मन, शोध-बोध व चिन्तन ध्यान।।
जिससे ज्ञान में होता विकास, पूर्व अपूर्ण ज्ञान का होता आभास।
अपूर्व ज्ञान हेतु होता प्रयास, जिससे ज्ञान में होता तीव्र विकास।। (3)

अन्यथा कुज्ञानी या अल्पज्ञानी, स्व-ज्ञान में ही होता अभिमानी।
नहीं बनता सुज्ञानी (या) महाज्ञानी, कुपमण्डुक सम संकीर्ण ज्ञानी।।
ज्ञान है आत्मा का निज स्वभाव, ज्ञानानंदमय आत्मा का भाव।
आत्मज्ञान प्राप्त करना जीव का धर्म, 'कनकनन्दी' का शुद्ध स्वधर्म।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 30.01.2016, रात्रि 11.48

आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव का गुरुकुल
शान्ति निकेतन-आनंद धाम-आध्यात्मिक विश्वविद्यालय

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : कोई जब तुम्हारा हृदय तोड़ दे.....)

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान परे...गहन-सूक्ष्म विषयों/(प्रश्नों) के उत्तर के लिए...
गुरुकुल कनक में है आओ...शिष्योंऽऽऽ
ये गुरुकुल है व्यापक...वैश्विक वाला...जहाँ/(तुम्हारे, सभी) के लिए...
आधुनिक ज्ञान-विज्ञान परे...(स्थायी)...

ये शांति निकेतन है..आनंदधाम...आध्यात्मिक विश्वविद्यालय महान्...
जिज्ञासु-शोधार्थी हैं आते यहाँ...समाधान पाते है व्यापक महा...
विद्या-कला-ज्ञान-गुण प्राप्त कर...प्रभावना करते बहुराष्ट्रीय...
गुरुकुल कनक में है आओ...शिष्योंऽऽऽ...(1)...

इस आनंदधाम में सतत तप...स्वाध्याय व शोध नियमित चले...
आनंददायी है शिक्षा यहाँ...समन्वय/(जोड़ रूप) रूप है ज्ञान यहाँ...
प्राचीन से लेकर आधुनिक तक...यदि ज्ञान करना है सम्यक् तुम्हें...
गुरुकुल कनक में है आओ...शिष्योंऽऽऽ...(2)...

आत्मानुशासन अलौकिक यहाँ...समयानुबद्ध व व्यवस्थित...
गुणी जनों का होता अनुमोदन...अभिवन्दन व अभिनन्दन...
अन्त्योदय से लेकर सर्वोदय...'सुविज्ञ' जनों को मिले है सहज...
गुरुकुल कनक में है आओ...शिष्योंऽऽऽ...(3)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 10.01.2016, मध्याह्न 2.30